

- पिछले पाँच दशकों में यह अनवरत देखा गया है कि पृथ्वी की जीवन रक्षक क्षमता को तीव्र गति से ह्रास हो गया है। इस ह्रास का मुख्य कारण वनों का मानव विकास की दृष्टि से नाश, प्रजातियों का विलुप्त होना और जल, मृदा एवं वायु का प्रदूषण है।
 - बढ़ती आबादी से भू-भाग और अन्य संसाधन सिमटकर छोटे होते जा रहे हैं। वायुमंडल से हानिकारक या विषैली गैसों में अनवरत वृद्धि जारी है जिसका दुष्प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर देखा जा सकता है।
 - बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए बड़े पैमाने पर जंगल काटे जा रहे हैं। देश में अनवरत बढ़ती आबादी के लिए भोजन तथा आवास की समस्या हल करने के उद्देश्य से बड़ी मात्रा में जंगलों का सफाया किया गया।
 - चारागाह के रूप में वन क्षेत्रों का अनियंत्रित उपयोग तथा वन्य प्राणियों के शारीरिक अवशेष इकट्ठा करने हेतु उनका अवैध शिकार अपनी गति से जारी है। वनों में विभिन्न प्रकार की वनोपज प्राप्त करने के लिए ठेकेदारों ने भी वनों को नष्ट किया है।
 - आदिम जातियों की झूम कृषि प्रणाली भी जंगलों के विनाश में प्रमुख भूमिका निभाती है।
 - हमारा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य जल, वायु की शुद्धता और आस-पास के वातावरण की स्वच्छता पर निर्भर करता है किन्तु औद्योगीकरण की तीव्र प्रक्रिया हो रही है जिनमें उद्योगों से उत्सर्जित जहरीली गैसें, वाहनों का धुआं प्रमुख है। इसके परिणाम स्वरूप आँखों में जलन, फेफड़ों में कैंसर, दमा जैसी खतरनाक बीमारियाँ आम हो गई हैं।
 - उद्योगों द्वारा विसर्जित अवशिष्ट पदार्थ के जल स्रोतों से मिलने से जल स्रोत रोग ग्रस्त होते हैं।
 - रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशक दवाइयों के बढ़ते प्रयोग, कल-कारखानों का कचरा, भूमि में आसानी से न विघटित होने वाली पॉलिथीन, प्लास्टिक के टुकड़े, काँच एवं अन्य जहरीले तत्वों से भूमि प्रदूषित हो रही है।
- वस्तुतः इन सबके के पीछे पर्यावरण संरक्षण के बारे में लोगों में अज्ञानता है। इस अज्ञानता को दूर करने के लिए पर्यावरण शिक्षा जरूरी है।

भारत में पर्यावरण शिक्षा की समस्याएँ

सर्वोच्च न्यायालय ने कक्षा-12 तक पर्यावरण शिक्षा लागू करना अनिवार्य कर दिया है। किन्तु बहुत सारे राज्यों ने इसे लागू नहीं किया है। वस्तुतः पर्यावरण के शैक्षिक पाठ्यक्रम लागू करने के संबंध में विवाद है। कुछ शिक्षाविदों ने इसकी उपयोगिता पर प्रश्न-चिन्ह खड़ा कर दिया है। उनके मतानुसार पहले से ही बच्चों का पाठ्यक्रम बोझिल है। पर्यावरण शिक्षा लागू होने से बच्चों पर अतिरिक्त दबाव आ जायेगा। पर्यावरण शिक्षा शैक्षिक विभागों या शिक्षकों के लिए प्राथमिकता नहीं रखता है। बहुत से शिक्षकों के लिए पर्यावरण शिक्षा विज्ञान से जुड़ा विषय है। वे यह नहीं सोचते कि इसे मानविकी, कला या अन्य दूसरे तरीकों से पढ़ाया जा सकता है। शिक्षाविदों का मानना है कि इसे पाठ्यक्रम में न जोड़कर स्वैच्छिक स्तर पर स्कूली या महाविद्यालय शिक्षा में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह पाठ्येत्तर विषय होना चाहिए जिसमें छात्रों को पारिस्थितिकीय के प्रति अभिरूचि और जागरूकता पैदा करने पर बल दिया जाना चाहिए। जहाँ पर्यावरण शिक्षा की पढ़ाई होती है। वहाँ पारिस्थितिकीय अध्ययन पर कम पेड़-पौधों व बाघ के बारे में अधिक बताया जाता है।

पर्यावरण शिक्षा संबंधी अन्य समस्याएँ यह है कि इसके पाठ्यक्रम किसी एक संस्था द्वारा तय किये जाते हैं और यह भारत के सभी भागों में लागू की जाती है, किन्तु भारत के विभिन्न क्षेत्रों की अपनी-अपनी पर्यावरणीय समस्याएँ हैं, जिस प्रकार कुपोषण की पारिस्थितिकी प्रणाली में निवास करने वाले लोगों को मरुस्थल के बारे में पढ़ाने से कोई विशेष उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। वास्तव में पर्यावरण शिक्षा की समस्याओं का समाधान उस समय तक संभव नहीं है जब तक इस आधुनिक जगत का शिक्षित समुदाय इसे शिक्षा का विषय की बजाय जीवनशैली का विश्व नहीं मानेंगे। सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ व्यक्ति विशेष को अपने स्तर पर पहल करनी होगी आज गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, जातिवाद, राजनैतिक विवाद इत्यादि किसी देश, प्रदेश या क्षेत्र विशेष की समस्याएँ हैं जबकि भू-मंडलीय तापन के कारण जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदाओं की तीव्रता एवं वृद्धि जैसी विश्वव्यापी समस्याएँ उत्पन्न होती जा रही हैं।



पारिस्थितिकी तंत्र (ECOLSYSTEM)



अर्थ

पारिस्थितिकी तंत्र एक क्रियाशील इकाई है जहाँ जीवित जीव भौतिक पर्यावरण से तथा भौतिक पर्यावरण जीवित जीव से क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं। अर्थात् पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक और अजैविक दोनों तत्वों का समावेशन होता है। इसे तंत्र कहने का आशय यह है कि पृथ्वी के समस्त जीव अपना जीवन चक्र एक निश्चित प्रणाली में अन्तर्क्रिया करके पूरा करते हैं जिससे एक भौगोलिक क्षेत्र में निश्चित और व्यवस्थित तंत्र का निर्माण होता है। पारिस्थितिकी को अंग्रेजी में Ecology कहा जाता है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'Oikos' व Logos से मानी जाती है। Oikos का शाब्दिक अर्थ 'वासस्थान' जबकि Logos का अध्ययन से।

‘पारिस्थितिकी तंत्र’ शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ‘ए० जी टान्सेल’ ने किया। पारिस्थितिकी तंत्र को परिभाषित करते हुए टान्सेल महोदय (1935) ने कहा कि “यह एक गतिक व्यवस्था है जिसकी संरचना के घटक हैं- (i) जैव परिवार जो एक साथ इकाई के रूप में रहते हैं तथा (ii) उसका निवास्य (Habitat) जो पालता एवं रक्षा करता है। किसी स्थान पर पाये जाने वाले जैविक समुदाय (Biotic Community) परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा पर्यावरणीय तत्वों एवं ऊर्जा का आदान-प्रदान करते रहते हैं।” इस प्रकार जीव समुदायों के जीवों की संरचना, कार्य एवं उसके समुदाय तथा पर्यावरण से पारस्परिक सम्बन्ध को पारिस्थितिकी तंत्र कहा जाता है।

परिभाषाये

“पारिस्थितिकी तंत्र, एक क्षेत्र के अन्दर समस्त प्राकृतिक जीवों तथा अजैविक तत्वों का सकल योग होता है”

सी.सी.पार्क, 1980

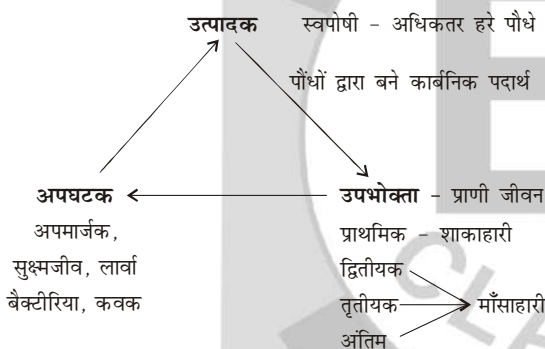
“जीवित जीव तथा उनके अजैविक पर्यावरण एक दूसरे से अविभाज्य रूप से सम्बन्धित है तथा एक दूसरे से क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं। कोई भी इकाई, जो किसी निश्चित क्षेत्र के समस्त जीवों के समुदायों को सम्मिलित करती है तथा भौतिक पर्यावरण साथ इस तरह प्रतिक्रिया करती है कि तंत्र के अन्दर ऊर्जा-प्रवाह द्वारा सुनिश्चित पोषण संरचना, जैविक विविधता तथा खनिज चक्र का आविर्भाव होता है, पारिस्थितिकीय तंत्र या पारिस्थितिकी तंत्र होता है”

ई.पी.ओडम 1971

पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना (Structure of Ecosystem)- पारिस्थितिकी तंत्र को कई रूपों में देखा जा सकता है, इसलिए कोई निर्धारित संरचना नहीं है जिससे पारिस्थितिकी तंत्र में रूपित किया जा सके। फिर भी सभी पारिस्थितिकी तंत्र ऊर्जा के ज्ञात स्रोत साथ जैविक और अजैविक तत्वों को समाहित करता है। अर्थात् जैविक और अजैविक तत्वों के परस्पर क्रियाओं के फलस्वरूप एक भौतिक संरचना विकसित होती है जो प्रत्येक प्रकार के परितंत्र की विशिष्टता होती है। जैवमण्डल को पारिस्थितिकी तंत्र की सबसे बड़ी इकाई माना जाता है अतः इसका समग्र अध्ययन व विश्लेषण जटिल है इसलिए अध्ययन और विश्लेषण को सहजता को बनाए रखने के लिए अलग-अलग कई इकाइयों में विभाजित किया जाता है।

क्रियाशीलता

परिभाषा के अनुसार, सभी पारिस्थितिकी तंत्र में पदार्थों का चक्रण तथा ऊर्जा का प्रयोग करते हैं इस प्रक्रिया को हम पारिस्थितिकी तंत्र की आधारभूत क्रियाशीलता कहते हैं। ऊर्जा प्रक्रिया में सामान्यतः पोषण स्तर से परिभाषित किया जाता है कि जीव की स्थिति उसके पोषण ग्रहण करने के स्तर और प्राथमिक उत्पादक द्वारा ग्रहण किये गये वास्तविक ऊर्जा की तुलना में परिभाषित करते हैं। ऊर्जा का प्रवाह हमेशा एकदिशीय होता है और पारिस्थितिकी तंत्र में उनके कार्य और संरचना को बनाए रखने के लिए उच्च गुणवत्ता ऊर्जा के एक सतत प्रवाह की आवश्यकता होती है। इसी कारण से पारिस्थितिक तंत्र एक 'खुला तंत्र है' जिसको हमेशा एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा प्रवाह की आवश्यकता होती है। बिना सूर्य के हमारा जैवमण्डल ऊर्जा से वंचित हो सकता है।



पारिस्थितिकी विज्ञान की शाखायें

पारिस्थितिकी विज्ञान का अध्ययन मुख्य रूप से निम्नलिखित दो शाखाओं के अन्तर्गत किया जाता है-

1. स्वयं पारिस्थितिकी
2. समुदाय पारिस्थितिकी

स्वयं पारिस्थितिकी के अन्तर्गत एक विशेष पौधे अथवा जन्तु या एक विशेष जाति और वातावरण से उसके संबंधों एवं प्रभावों का अध्ययन किया जाता है, वहीं समुदाय पारिस्थितिकी के अन्तर्गत एक ही स्थान पर पाये जाने वाले समस्त पादप एवं जन्तु समुदायों उनकी रचना एवं व्यवहार और उनके स्थान के वातावरण से संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

सामुदायिक पारिस्थितिकी को निम्नलिखित तीन उप-विभागों में बाँटा गया है-

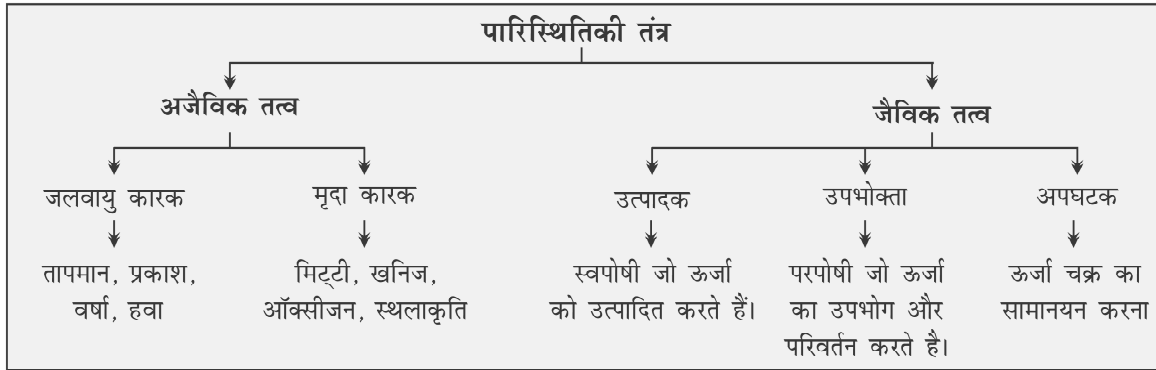
1. **आबादी पारिस्थितिकी के अन्तर्गत** किसी स्थान पर एक ही पादप अथवा जन्तु जाति विशेष के सम्पूर्ण सदस्यों द्वारा निर्मित आबादी तथा इससे वातावरण के संबंधों एवं प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।
2. **समुदाय पारिस्थितिकी के अन्तर्गत** किसी स्थान पर पाये जाने वाले सभी जाति के जीवधारियों (पादपों, जन्तुओं, जीवाणुओं तथा कवकों आदि) की आबादियों द्वारा निर्मित जैवीय समुदाय (Biotic Community) तथा इससे वातावरण के संबंधों का अध्ययन किया जाता है।
3. **पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिकी के अन्तर्गत** किसी स्थान के पारिस्थितिकी तंत्र के जीवीय (Biotic) एवं अजीवीय (Abiotic) घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा इन घटकों के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह तत्वों के चक्रीकरण तथा खाद्य जाल आदि का अध्ययन किया जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह एक ऐसे कटक के रूप में कार्य करता है जिससे पदार्थों का स्थानान्तरण होकर जीवों तथा उसके पर्यावरण में फैल जाते हैं, इस प्रक्रिया को भू-जैव-रसायन चक्र कहा जाता है। अपना जैवमण्डल इस चक्र के लिए एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें पदार्थों का स्थानान्तरण स्थलमण्डल, जलमण्डल और वायुमण्डल के साथ अन्तर्क्रिया के माध्यम से करता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएँ

- पारिस्थितिकी तंत्र सम्बन्धित स्थान क्षेत्र के समस्त जैविक एवं भौतिक तत्वों का योग होता है।
- सभी पारिस्थितिकी तंत्र का एक निश्चित क्षेत्र होता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक, भौतिक एवं ऊर्जा संघटकों के बीच अन्तर्क्रिया होती और विभिन्न जीवों के माध्यम से आपस में क्रियाएँ चलती रहती है।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक 'खुला तंत्र' होता है जिसमें ऊर्जा व पदार्थों का आगमन और वर्हिगमन होता रहता है।



- पारिस्थितिकी तंत्र में अनुक्रमण होता रहता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता ऊर्जा मात्रा की सुलभता पर निर्भर करती है।

जीव जन्तुओं को प्रभावित करता है जो जीव का भोजन के रूप में उपभोग भी करता है। प्रत्येक जैविक कारक को उचित विकास के लिए भोजन और ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जैविक कारकों में मानव प्रभाव शामिल है।

पारिस्थितिकी तंत्र के संघटक

जैविक संघटक

जीव विज्ञान और पारिस्थितिकी में, अजैविक संघटक में भौतिक दशाओं के साथ निर्जीव संसाधन शामिल होते हैं जो जैविक घटकों के रखरखाव, विकास और प्रजनन आदि को प्रभावित करते हैं। संसाधन वातावरण में पदार्थ या वस्तुओं के रूप प्रतिष्ठित है।

जैविक संघटक-अर्थ

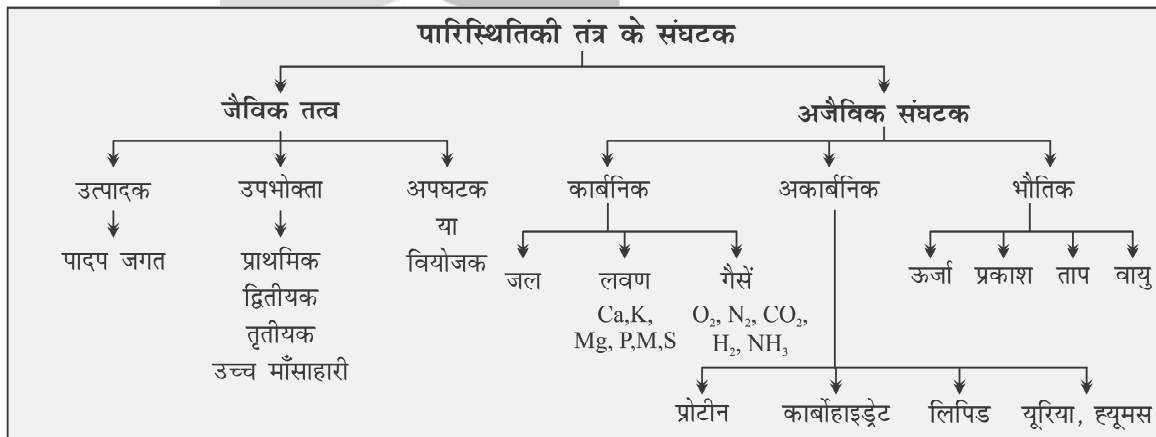
जैविक संघटक जीवित वस्तुएं हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र को आकार देते हैं। जैविक कारक कोई भी जीवित संघटक है जो

उत्पादक

उत्पादक मुख्य रूप से पादप जगत (हरे पौधे) जो स्वपोषी पौधे होते हैं, को शामिल करते हैं। ये जैविक और अजैविक संघटकों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं। ये सूर्य से ऊर्जा प्राप्त कर स्वयं अपना भोजन निर्मित करते हैं। मिट्टी से जड़ों द्वारा अजैविक पदार्थों के कारण करते हैं तथा ये जन्तुओं के लिए भोजन प्रदान करते हैं। इसी कारण हरे पौधों को प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है।

उपभोक्ता

उपभोक्ता इनमें मानव सहित वे जीवधारी आते हैं जो अपना भोजन प्राथमिक उत्पादकों (हरे पौधे) अथवा अन्य जीवधारियों



को खाकर प्राप्त करते हैं। सभी उपभोक्ताओं में परपोषी गुण पाया जाता है।

- (a) **प्राथमिक उपभोक्ता:** इसके अन्तर्गत वे जीवधारी आते हैं जो प्राथमिक उत्पादकों अथवा हरे पौधों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं, ये शाकाहारी होते हैं। गाय, बकरी, हिरन, खरगोश, चूहा आदि।
- (b) **द्वितीयक उपभोक्ता:** इसके अन्तर्गत वे जीवधारी आते हैं जो अपना भोजन शाकाहारी अथवा प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं को खाकर करते हैं। इस श्रेणी के उपभोक्ता मांसाहारी होते हैं।
- (c) **तृतीयक उपभोक्ता:** इसमें वे मांसाहारी जीव आते हैं जो द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ताओं को खाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं।
- (d) **उत्पन्नामांसाहारी उपभोक्ता:** इसमें वे जन्तु आते हैं जो सभी प्रकार के मांसाहारी को खाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं परन्तु इन्हें कोई नहीं अपना भोजन बनाता - जैसे शेर, चीता।

अपघटक या नियोजक

ये सूक्ष्म जीव होते हैं जो मृत वनस्पतियों और जन्तुओं को सड़ा गला कर वियोजित करते हैं तथा इसी प्रक्रिया के द्वारा ये अपना भोजन भी इन्हीं मृतजीवों से प्राप्त करते हैं। साथ ही साथ हानि प्रक्रिया के दौरान ये जैविक नातों की पुनर्व्यवस्था भी करते हैं। ये जटिल पदार्थों को सरल करते हैं जिसे ये पदार्थ पुनः प्राथमिक उत्पादकों के लिए सुलभ हो जाते हैं।

अजैविक संघटक

कार्बनिक घटक

इसके अन्तर्गत मृत पौधे एवं जन्तुओं के कार्बनिक पदार्थों और योगिकों जैसे-प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स और उनके अपघटक

द्वारा उत्पादित उत्पाद जैसे-यूरिया और ह्यूमस आदि खाते हैं। वियोजक द्वारा जीवधारियों का कुछ भाग अकार्बनिक रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है जहाँ से पुनः छोटे पौधों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। कार्बनिक तथा अकार्बनिक भाग मिलकर निर्जीव वातावरण का निर्माण करते हैं।

अकार्बनिक घटक

इसके अन्तर्गत जल विभिन्न खनिज लवण जैसे-फास्फेट, पोटेशियम, मैगनीशियम, कैल्शियम, सल्फर, नाइट्रोजन आदि तथा विभिन्न गैसों जैसे-ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन, हाइड्रोजन, अमोनिया आदि शामिल होते हैं।

भौतिक घटक

इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के जलवायुवीय कारक जैसे-प्रकाश, तापमान, हवा, वर्षा, ऊर्जा आदि मुख्य हैं। हरे पौधों के पर्णहरिम सूर्य विकिरण द्वारा ली गयी सूर्य ऊर्जा मुख्य है, पौधे इस ऊर्जा का कार्बनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं जो कार्बनिक अणुओं के रूप में संचित रहती है। यदि वह ऊर्जा है जो सम्पूर्ण जीवीय समुदाय में प्रवाहित हो रही है और दोनों के द्वारा पृथ्वी पर जीवन सम्भव है।

पारिस्थितिकी तंत्र की क्रिया

एक पारिस्थितिकी तंत्र में दो प्रक्रियाएं एक साथ आगे बढ़ती हैं-

1. ऊर्जा प्रवाह
2. भू-जैव-रसायन चक्र (परितंत्र में तत्व संचरण)

पृथ्वी को एक इकाई पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में माने तो

निम्न क्रियाएं एक साथ चलती रहती हैं इन्हें पारिस्थितिकी या 'परितंत्र की सेवाएँ' के नाम से जाना जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र क्रिया श्रेणी	पारिस्थितिकी तंत्र क्रिया	वर्णन
विनियमन क्रिया	गैस व्यवस्थापन	ग्रीन हाउस गैसों, फोटो केमिकल स्मॉग, वाष्पशील कार्बनिक यौगिक भू-जैव-रसायन क्रियाओं में प्राकृतिक और संचालन तंत्र के प्रभाव से सम्बन्धित क्रियाएँ।
	जलवायु व्यवस्थापन	भूमि आच्छादन का प्रभाव और जैविक बिचौलियों की प्रक्रिया जो वायुमण्डलीय प्रक्रिया और मौसम प्रतिरूप को व्यवस्थित करता

		है और बदले में माइक्रो जलवायु पैदा करता है जिसमें जीवित जीव और (मान सहित) जन्तु रहते हैं।
	बाधा व्यवस्थापन	मिट्टी क्षमता और वनस्पति को हवा और पानी और लहरों की आघात और ऊर्जा संग्रहण क्षमता और सतही प्रतिरोध।
	जल व्यवस्थापन	वायुमण्डल के माध्यम से पानी का भूमि आवरण, स्थलाकृति, मिट्टी, जलीय दशा में स्थानिक और कालिक वितरण
	मिट्टी धारण	पर्याप्त वनस्पति आवरण, मूल जैवमार के द्वारा मिट्टी की क्षति कम और उसकी गुणों से बनाए रखता है।
	पोषण की व्यवस्था	पोषण तत्वों का परिवहन, भंडारण और पुनर्चक्रण भी पारिस्थितिकी तंत्र की भूमिका।
	हानि शोधन और अनुकूलन	पारिस्थितिकी प्रणाली के जैविक और अजैविक आर्धम्य को वितरण, परिवहन, आत्मघात और रासायनिक पुनर्रचना के माध्यम में
	परागण	परागण पादप और जैविक वेक्टर और अजैविक वेक्टर के बीच पुरुष युग्मों के संचालन में पौधों के उत्पादन के लिए। परागण और बीज प्रसरण आपस में जुड़े हैं।
	वनस्पति का बाधा प्रभाव	वनस्पति हवाई पदार्थों की आजादी में बाधा उत्पन्न करती है जैसे-धूल और एयरोसॉल।
सहायक क्रियाएं	प्राकृतिक आवास में	अलग-अलग प्रजातियों और जैविक समुदायों तथा प्राकृतिक और अर्द्ध प्राकृतिक तंत्र का संरक्षण
	मृदा निर्माण	मृदा निर्माण की प्रक्रिया, जो चट्टान के भौतिक और रासायनिक अपरदन और परिवहन के साथ-साथ उसके जैविक और अजैविक तत्वों को समिश्रण।
प्रावधान क्रिया	खाद्य	जैवभार जिससे जीवित जीव जीवित रह सके। पदार्थ जिसमें वह पोषण में बदल सके।
	कच्चे पदार्थ	खापा के अलावा जैवमार को किसी और के लिए प्रयोग
	जल पूर्ति	पारिस्थितिकी तंत्र अवशादों में पानी की उपलब्धता के साथ-साथ वर्षा द्वारा भी
	आनुवांशिक संसाधन	परिस्थितिक तंत्र संयम आनुवांशिक विविधता को बनाता है जब विकास प्रक्रिया देता है।
	छाया और शरण की प्रावधान	यह वनस्पति और जन्तु से सम्बन्धी उस सुधारात्मक चरम मौसम और जलवायु के समय से जब-जब पौधों और जन्तुओं को छाया तथा शरण की आवश्यकता होती है।
	औषधीय संसाधन	प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग जन्तु (विशेष मानव) अपने स्वास्थ्य की रक्षा तथा संरक्षण भी कर सकता है।
सांस्कृतिक क्रिया	स्थलाकृति उपलब्धि	प्राकृतिक परिदृश्य और स्थलाकृति की विविधता की वृद्धि।

संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र

जीवधारियों को जीवित रहने के लिए संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र की आवश्यकता होती है। प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में कई खाद्य शृंखलायें होती हैं। ये शृंखलायें आपस में मिलकर खाद्य जाल (Food Web) बनाती हैं। किसी पारिस्थितिकी तंत्र के खाद्य जाल में खाद्य शृंखलाओं के जितने अधिक वैकल्पिक रास्ते होंगे उतना ही तंत्र अधिक संतुलित होगा और उनमें जीवों की संख्या अधिक स्थिर रहेगी। जब किसी खाद्य जाल में एक खाद्य शृंखला के किसी उपभोक्ता की संख्या कम होने लगती है तो उस खाद्य शृंखला के ठीक ऊपर के श्रेणी का उपभोक्ता दूसरी खाद्य शृंखला के उसी श्रेणी (जिस श्रेणी के उपभोक्ता की संख्या कम होने लगती है) के उपभोक्ता को खाने लगता है। इस प्रकार ऊपर की श्रेणी का उपभोक्ता एक दूसरा वैकल्पिक रास्ता ढूँढ़ लेता है। अब दूसरी वाली खाद्य शृंखला के पोषक उपभोक्ता की संख्या में वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र संतुलित बना रहता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता

जब वाह्य कारक सक्रिय होकर पारिस्थितिकी तंत्र में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं तो इसे पुनः व्यवस्थित करने के लिए अन्तःनिर्मित स्वतः नियंत्रण की व्यवस्था कार्य करने लगती है। फलस्वरूप इसमें संतुलन स्थापित हो जाता है, जो उसे पुनः व्यवस्थित व स्थिर कर देती है।

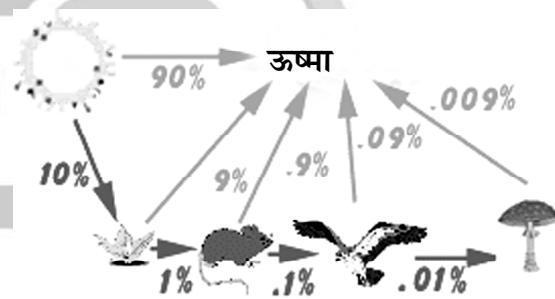
C.S. Elton के अनुसार- “आहार जाल की विविधता में वृद्धि से पारिस्थितिकी तंत्र में स्थिरता की वृद्धि होती है।”

आर.एच. मैक आर्थर के अनुसार “खाद्य शृंखला की कड़ियों की वृद्धि के साथ पारिस्थितिकी तंत्र में स्थिरता बढ़ती जाती है।” इसका कारण है कि उसी अनुपात में पारिस्थितिकी तंत्र में, ऊर्जा प्रवाह के वैकल्पिक मार्ग बढ़ जाते हैं, जो जीवों को पारिस्थितिकी तंत्र में होने वाले परिवर्तनों को सहन करने तथा उसके साथ समायोजन व अनुकूलन के अवसर प्रदान करते हैं जिसके कारण पारिस्थितिकी तंत्र में स्थिरता बढ़ जाती है।

E.P. Odum के अनुसार- पारिस्थितिकी तंत्र में जातियों की जितनी विविधता अधिक होती है उसकी स्थिरता उतनी अधिक होती है।

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

ऊर्जा से पारिस्थितिकी तंत्र संचालित होता है। समस्त जीव-जन्तु भोज्य पदार्थों के माध्यम से ऊर्जा प्राप्त करते हैं और अपने जीवन चक्र को पूर्ण करते हैं। पौधे एवं वृक्ष मिट्टी से खनिजों को ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् पौधों को भोजन के रूप में जीवधारी ग्रहण करते हैं और खनिज पदार्थों को जीव ऊर्जा की सहायता से रसायनों में बदल देते हैं। ऊर्जा प्रवाह एवं खनिज चक्र से पारिस्थितिकी तंत्र जीवन्त रहता है। ऊर्जा भोजन के माध्यम से एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर की ओर प्रवाहित होती है और इस प्रकार खनिज चक्रीय रूप से गतिमान रहता है। इस प्रकार पारिस्थितिकी की गत्यात्मकता को बनाये रखने में ऊर्जा प्रवाह एवं खनिज चक्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।



सूर्य ऊर्जा का मूल स्रोत है। सूर्य से विकिरित (Radiant Energy) ऊर्जा से धरातल गर्म हो जाता है और धरातल ताप ऊर्जा (Heat Energy) का उत्सर्जन करता है। ताप ऊर्जा की दीर्घ तरंगों से वायुमंडल ताप युक्त हो जाता है। पौध सौर्य ऊर्जा ग्रहण कर प्रकाश संश्लेषण करते हैं जिससे रासायनिक ऊर्जा का जन्म होता है। ऊर्जा के अनेक रूप हैं परन्तु उसका स्रोत सूर्य ही है। वायुमण्डल तथा पृथ्वी संयुक्त रूप से ऊर्जा तंत्र का निर्माण करते हैं। ऊर्जा तंत्र पारिस्थितिकी को नियमित करता है। पौधों द्वारा अवशोषित प्रकाश ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में रूपान्तरित हो कर खाद्य पदार्थों में इकट्ठी होती है।

कार्बनिक पदार्थों के आक्सीकरण से रासायनिक ऊर्जा गतिज ऊर्जा तथा ताप के रूप में अवमुक्त होती है। जैविक क्रियाओं का सम्पादन गतिज ऊर्जा के माध्यम से होता है।

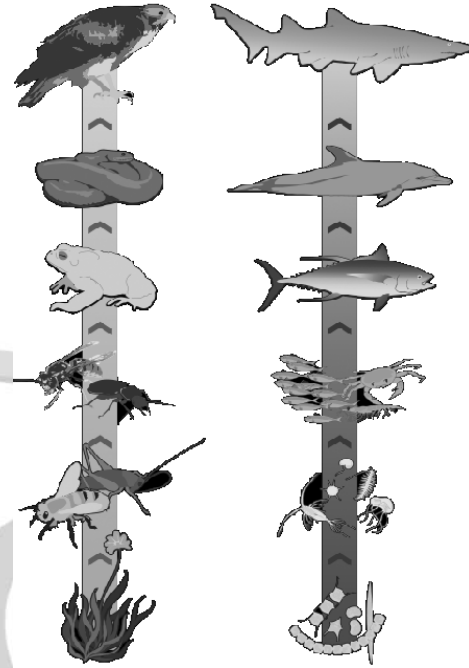
जैविक क्रियाओं के सम्पन्न होने के उपरान्त गतिज ऊर्जा ताप के रूप में मुक्त होकर पर्यावरण में लौट जाती है।

हरे पौधे संचित ऊर्जा का 90% हिस्सा अपनी जैविक क्रियाओं में व्यय करते हैं तथा ऊर्जा को आहार के रूप में ग्रहण करने वाले शाकाहारी जीव-जन्तुओं को शेष 10% ऊर्जा स्थानान्तरित होती है। हर पोषण स्तर पर 90% ऊर्जा जैविक क्रियाओं में व्यय होती है, मात्र 10% ऊर्जा ही उच्च श्रेणी की ओर अग्रसर होती है। इसीलिए प्राथमिक उपभोक्ताओं से उच्चतम उपभोक्ताओं की संख्या क्रमशः ह्रासमान होती है। जीवधारियों में ऊर्जा प्रवाह ऊष्मागतिक नियम (Law of Thermodynamics) के अनुरूप होता है।

सौर ऊर्जा पारिस्थितिकी तंत्र के पोषण स्तर से होती हुई आकाश की ओर गमन कर जाती है तथा पुनः उस ऊर्जा की प्राप्ति किसी भी दशा में नहीं हो पाती। ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम के अनुसार ऊर्जा न तो उत्पन्न होती है और न ही समाप्त। वस्तुतः ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूपों में परिवर्तित होती जाती है। पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा निवेश (Energy Input) का उसी तंत्र से ऊर्जा के निर्गमन (Out Flow) द्वारा सन्तुलन हो जाता है। द्वितीय नियम के अनुसार जब पारिस्थितिकी तंत्र में कोई कार्य सम्पन्न होता है, तब ऊर्जा व्यय होती है। जब ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित होती है, तब कार्य सम्पन्न होता है अर्थात् ऊर्जा को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रकृति में ऊर्जा का विद्युत, प्रकाश, रासायनिक, यांत्रिक एवं ताप के रूप में विसरण सम्पन्न होता रहता है। ऊर्जा का शत-प्रतिशत रूपान्तरण किसी भी दशा में सम्भव नहीं है। ऊर्जा का स्थानान्तरण खाद्यशृंखला के माध्यम से जीवधारियों में सम्पन्न होता है।

आहार शृंखला (Food Chain)

किसी पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य शृंखला विविध प्रकार के जीव जन्तुओं का वह क्रम है जिसमें जीवधारी भोज्य और भक्षक के रूप में सम्बद्ध होते हैं। आहार शृंखला प्रथम पोषण स्तर से प्रारम्भ होकर चतुर्थ स्तर तक को आबद्ध करती है। इसमें ऊर्जा एवं रासायनिक पदार्थ उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटनकर्ता द्वारा निर्जीव पर्यावरण में प्रवेश करते हैं और पुनः चक्रीकरण द्वारा जैविक घटकों में प्रवेश कर जाते हैं।



सभी प्रकार के पारितन्त्रों में दो प्रकार की खाद्य शृंखलाएँ होती हैं:-

1. चारण खाद्य शृंखला (Grazing Food Chain)

: चरण खाद्य शृंखला में प्राथमिक उत्पादक से लेकर शाकाहारी, शाकाहारी से मांसाहारी, तथा मांसाहारी से सर्वोच्च मांसाहारी तक का विस्तार होता है।

2. अपरदन खाद्य शृंखला (Detritus Food Chain):

अपरदन खाद्य शृंखला मृत कार्बनिक पदार्थ से प्रारम्भ होकर मिट्टी में अपरदन खाने वाले जीवों, तथा अपरदभक्षी जीवों पर भोजन के लिए आश्रित रहने वाले जीवों तक विस्तृत रहती है।

एक अन्य मत के अनुसार खाद्यशृंखलाएँ तीन प्रकार की होती हैं-

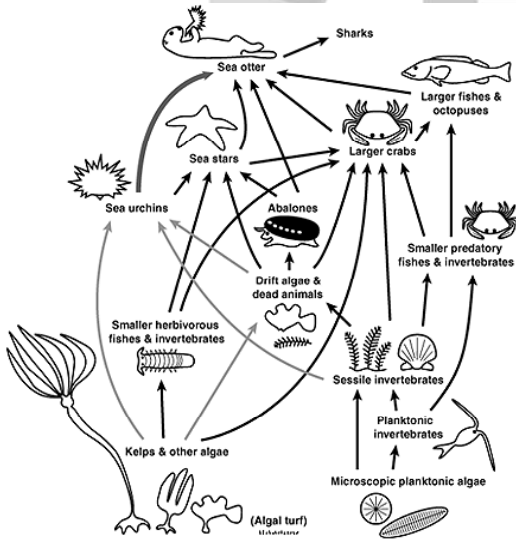
1. परभक्षी खाद्य शृंखला (Predator Food Chain):

पौधों से छोटे जीव और बड़े जन्तुओं की ओर अग्रसर होती है।

2. **परजीवी खाद्य शृंखला (Parasitic Food Chain):** पौधों से बड़े जन्तुओं और छोटे जीवों की ओर अग्रसर होती है।
3. **मृतोपजीवी खाद्य शृंखला (Saprophytic Food Chain):** मृत प्राणियों से सूक्ष्म जीवों की ओर अग्रसर होती है। प्रत्येक भोजन शृंखला में उत्पादक एवं उपभोक्ता विद्यमान होते हैं।

आहार जाल (Food Webs)

खाद्य शृंखला में उत्पादक, तथा प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उपभोक्ताओं में सरल सम्बन्ध होता है, लेकिन जब परितन्त्र में कई जातियों के जन्तु एक ही प्रकार के भोज्य पदार्थ को खाते हैं या एक ही प्रकार की जाति कई प्रकार के भोज्य जन्तुओं का भक्षण करते हैं तो आहार शृंखला जटिल हो जाती है।



इस प्रकार की जटिल आहारशृंखला को आहार जाल कहते हैं। उदाहरण के लिए घास परितन्त्र में पौधों (उत्पादक) से चूहे खाद्य प्राप्त करते हैं। चूहे को सर्प एवं सर्प को बाज खाता है। इस प्रकार एक खाद्य शृंखला सम्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार घास पारितन्त्र में टिड्डी पौधों से भोजन प्राप्त करती है। टिड्डी को मेंढक खाता है। मेंढक को सर्प तथा सर्प को बाज खा जाता है। इस प्रकार द्वितीय खाद्य शृंखला पूर्ण होती है। पारितन्त्र में

खाद्यशृंखलाएँ परस्पर सम्बन्धित होकर खाद्य जाल का सृजन करती हैं। खाद्य जाल में ऊर्जा प्रवाह बहुआयामी हो जाता है तथा जीवधारियों को वैकल्पिक भोज्य पदार्थ उपलब्ध रहते हैं और पारितन्त्र स्थिर रहता है। खाद्यशृंखला एवं खाद्य जाल के माध्यम से जीवधारियों में ऊर्जा प्रवाह सम्पन्न रहता है तथा जीव जन्तु एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं जिससे विविध खाद्य स्तर के जीवधारियों की संख्या में संतुलन एवं नियन्त्रण बना रहता है।

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार

पारिस्थितिक तंत्र का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है जैसे-क्षेत्र के आधार पर, उपयोग के आधार पर, ऊर्जा स्रोत एवं स्तर के आधार पर, विकास की अवस्था के आधार पर अथवा स्थिरता के आधार पर। यहाँ इस अध्याय में क्षेत्र के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया जा रहा है। उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक, तीनों की अन्तर्क्रिया पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना करती है। इस तंत्र के दो प्रमुख प्रकार हैं:-

1. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र (Aquatic Ecosystem)
2. स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र (Terrestrial Ecosystem)

जलीय पारिस्थितिक तंत्र के दो प्रकार स्वच्छ जलीय तथा समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र हैं जो आगे भी कुछ उप-प्रकारों में वर्गीकृत हैं।

स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के प्रमुख चार प्रकार हैं-वन, घास स्थल, मरुस्थल तथा मनुष्य निर्मित पारिस्थितिकी। वन के भी कई प्रकार हैं जैसे-सदाबहार वन, उष्णकटिबन्धीय वन, पर्णपाती वन आदि। घास स्थल भी मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं-शीतोष्ण घास स्थल और उष्णकटिबन्धीय घास स्थल। मरुस्थल के दो वर्गों में विभक्त किया गया है-उष्ण मरुस्थल और शीत मरुस्थल मनुष्य निर्मित पारिस्थितिकी के भी मुख्य दो प्रकार हैं-बाग और खेत।

इस प्रकार सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के कई उप-भाग हैं। क्षेत्र के आधार पर किए गए पारिस्थितिकी तंत्र के इस वर्गीकरण को रेखाचित्र के माध्यम से सरल रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

कुछ प्रमुख पारिस्थितिकी तंत्र

वन पारिस्थितिकी तंत्र

वन पारिस्थितिकी तंत्र में शाक जातियों तथा सघन वृक्षों की प्रचुरता रहती है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की जलवायु पर आधारित विभिन्न प्रकार के वन मिलते हैं। मोटे तौर पर इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. ऊष्ण कटिबन्धीय वन

ये दो प्रकार के हैं-वर्षावन अथवा सदाबहार वन, और पर्णपाती अथवा पतझड़ वन। सदाबहार वन गर्म और अधिक जलवृद्धि वाले क्षेत्रों में मिलते हैं जबकि पतझड़ वन शुष्क मिट्टी वाले क्षेत्रों में मिलते हैं।

(a) ऊष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन या सदाबहार वन (Tropical Rain or Evergreen Forests): सदाबहार वन वर्ष भर वर्षा होने वाले भूमध्यरेखीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। अमेजन घाटी, ब्राजील तट, मध्य अमेरिका, कांगो बेसिन, भारत के पश्चिमी घाट तथा उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र, भूमध्य रेखीय पूर्वी द्वीपों तथा समुद्र तटों पर ये सदाबहार वन फैले हैं। इन वनों में महोगनी, सेडार (cedar), सुरु (cyprus), ऐबोनी, बांस, रबर, नारियल, केला, सुपारी, सिनकोना आदि के वृक्ष मिलते हैं। ये वन अत्यन्त सघन होते हैं। इनमें पतझड़ का कोई निश्चित समय नहीं होता। एक ही समय एक डाल से पत्तियाँ झड़ती हैं और दूसरी डाल में नई पत्तियाँ निकलती हैं। इसी कारण इन्हें सदाबहार वन कहा जाता है। इन वनों का अधिकांश विस्तार भूमध्य रेखा से 5° दक्षिणी अक्षांशों के बीच पाया जाता है। अमेजन घाटी में इन वनों को सेलवास (Selvas) कहा जाता है। इन वृक्षों के शिखर छतरीनुमा लहरदार दिखाई पड़ते हैं। प्रकाश की प्राप्ति के लिए इन सघन वनों के वृक्ष तेजी से बढ़ते चले जाते हैं। इन वनों के वृक्ष एवं लताएँ आपस में ग्रन्थित होती हैं। इन वनों की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं:-

1. इन बागों में पाये जाने वाले पौधों, वृक्षों में विविधता पायी जाती है। अध्येताओं का मानना है कि एक एकड़ क्षेत्रफल में 15 से 40 प्रकार के वृक्ष मिल जाते हैं।
2. इन वनों में बड़े वृक्षों के नीचे छोटे वृक्षों की शृंखला मिलती है। वृक्ष लताओं से घिरे होते हैं। वृक्षों के ऊपर वृक्ष उग आते हैं।

3. इन वनों के वृक्ष अत्यधिक वर्षा एवं ताप के कारण हरे-भरे रहते हैं। वन सघन होते हैं। आन्तरिक विविधता होते हुए भी बाह्य रूप एक-सा दिखायी देता है।
4. वृक्षों की लम्बाई शाखा सहित 150° - 180° तक होती है। इन वृक्षों की छाले चिकनी तथा पतली होती है। वृक्ष छायादार होते हैं।
5. इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों की जड़े छिछली जकड़दार होती हैं। वृक्ष कमजोर होते हैं।
6. सदाबहार वनों में कच्छ वनस्पति (Mangroves) दलदली समुद्र तटों पर पाये जाते हैं। इन वृक्षों की जड़े जटा की तरह बिखरी रहती हैं तथा तने को जल के तल से ऊपर उठाये रखती हैं। इन वृक्षों से प्राप्त लकड़ी उत्तम कोटि का कोयला बनाने में प्रयुक्त होती है।

भूमध्यरेखीय वनों की लकड़ियाँ अत्यन्त उपयोगी हैं लेकिन इनका दोहन अत्यन्त कठिन है। दलदल के कारण मार्गों का अभाव है। ग्रन्थित होने के कारण इन्हें अलग करना दुरूह है। एक ही प्रकार के वृक्ष एक साथ नहीं मिलते, अतएव इनका व्यापारिक कटान कठिन है। इन वनों का व्यापारिक दोहन नदियों के सहारे सीमित रूप से होता है। इन वन क्षेत्रों के अनुकूल क्षेत्रों में बागानी कृषि की जाती है। रबर, केला, गन्ना, अन्नानास, काली मिर्च, कहवा, लौंग, आदि के बाग विकसित किये गये हैं। झूम कृषि इन वन प्रदेशों में की जाती है।

(b) उष्ण कटिबन्धीय पतझड़ वन (Tropical Deciduous Forests): भारतवर्ष, दक्षिणी पूर्व एशिया के आन्तरिक भाग, ब्राजील पठार के पूर्वी ढालों, उत्तरी आस्ट्रेलिया, मध्य अफ्रीका के दक्षिणी हिस्से उष्ण कटिबन्धीय वनों से आच्छादित हैं। इस प्रकार के वनों में बहुमूल्य इमारती काष्ठ वाले वृक्ष सागौन, शीशम एवं साखू पाये जाते हैं। आम, बांस, नीम, इमली, जामुन, महुआ, चन्दन, नारियल आदि वृक्षों की भी बहुतायत होती है। उल्लेखनीय है कि इन वन क्षेत्रों में उष्ण ऋतु शुष्क होती है, तापमान उच्च हो जाता है। ग्रीष्म काल के पूर्व इन वनों के वृक्ष पत्तियाँ गिरा देते हैं। कालान्तर में छोटी-छोटी कोपलें निकलती हैं। वृक्षों के पतझड़ से मृदा जल का अवशोषण कम हो जाता है। पत्तों के अभाव में वाष्पीकरण भी कम होता है। इन वन क्षेत्रों में मानव के सघन बसाव हैं। कृषि क्षेत्र विस्तार के कारण वन क्षेत्र सीमित होते गये। सम्प्रति इन वनों से हमारी

बहुत-सी घरेलू एवं औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, इसलिए इनका अति दोहन हो रहा है।

2. शीतोष्ण कटिबन्धीय वन (Temperate Forests)

मध्य अक्षांशों में तापमान की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शीत ऋतु में 18° से. अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष पाये जाते हैं। 6°-18° से. तापमान वाले प्रदेशों में नुकीली एवं चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों की बहुतायत होती है। चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष जाड़े में पत्तियाँ गिरा देते हैं तथा गर्मियों में इनमें पत्तियाँ किल आती हैं।

(a) चौड़ीपत्ती वाले वन (Broad leaf Forests) : इन वनों का विस्तार भूमध्यसागर के तटवर्ती प्रदेश, पूर्वी स्पेन, पश्चिमी पुर्तगाल, द. फ्रांस, इटली, यूनान, अल्बानिया, यूगोस्लाविया (पूर्वनाम), सीरिया, लेबनान, इजराइल के तटवर्ती भाग, तुर्की तट, एटलस प्रदेश, द. अफ्रीका संघ के प्रदेश, कैलिफोर्निया की मध्य घाटी, मध्य चीली, द. पूर्वी आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड में है। शीत एवं ग्रीष्म ऋतुएँ यहाँ वनस्पति विकास में बाधक हैं लेकिन वसन्त ऋतु के कारण पेड़-पौधों की जड़ें भूमि में गहराई तक चली जाती हैं। वृक्षों की छाल चिकनी तथा मोटी होती है। संयुक्त राष्ट्र की कैलिफोर्निया घाटी में इन्हें चैपराल तथा यूरोपीय देशों में इन्हें मैक्वीस कहते हैं। इन वनों में चौड़ी पत्ती वाले जैतून, ओक, अंजर, पाइन, फर, साइप्रस, कौरिगम, शहतूत, चेस्टनट, बालनर, लारेन, एवं यूकेलिप्टस पाये जाते हैं।

(b) शंकुधारी या नुकीली पत्ती वाले वन (Coniferous Forests) : इस प्रकार के वन उत्तरी अमेरिका तथा यूरोशिया में पाये जाते हैं। इन वनों के वृक्षों की पत्तियाँ उगती-गिरती रहती हैं। ये सदाबहार वृक्ष हैं। ये वृक्ष कभी भी पत्तीविहीन नहीं होते। अल्प ग्रीष्म तथा लम्बी शीतऋतु के कारण वृक्षों की पत्तियाँ नुकीली हो जाती हैं। इन वनों को टैगा वन या बोरियल भी कहा जाता है। इन वनों में पाइन, लार्च, स्प्रूस एवं फर के वृक्ष पाये जाते हैं। धरातल पर घास नहीं उगती। ये वन सुगम्य हैं। कागज की लुग्दी इन्हीं वनों के वृक्षों से बनायी जाती है। कुछ वृक्ष की लकड़ियाँ इमारती कार्यों में भी प्रयुक्त होती हैं। औद्योगिक तथा इमारती कार्यों के लिए इन वनों का व्यापक दोहन हुआ है। वनों से दियासलाई की लकड़ी, तारपीन का तेल, कागज की लुग्दी की लकड़ी आदि प्राप्त की जाती है। इन वनों में कहीं-कहीं चरागाह भी मिलते हैं।

शंकु वन पारिस्थितिकी तंत्र (Coniferous Forests)

इस प्रकार के वन उत्तरी अमेरिका तथा यूरोशिया में पाये जाते हैं। इन वनों के वृक्षों की पत्तियाँ उगती-गिरती रहती हैं। ये सदाबहार वृक्ष हैं। ये वृक्ष कभी भी पत्तीविहीन नहीं होते। अल्प ग्रीष्म तथा लम्बी शीतऋतु के कारण वृक्षों की पत्तियाँ नुकीली हो जाती हैं। इन वनों को टैगा वन या बोरियल भी कहा जाता है। इन वनों में पाइन, लार्च, स्प्रूस एवं फर के वृक्ष पाये जाते हैं। धरातल पर घास नहीं उगती। ये वन सुगम्य हैं। कागज की लुग्दी इन्हीं वनों के वृक्षों से बनायी जाती है। कुछ वृक्ष की लकड़ियाँ इमारती कार्यों में भी प्रयुक्त होती हैं। औद्योगिक तथा इमारती कार्यों के लिए इन वनों का व्यापक दोहन हुआ है। वनों से दियासलाई की लकड़ी, तारपीन का तेल, कागज की लुग्दी की लकड़ी आदि प्राप्त की जाती है। इन वनों में कहीं-कहीं चरागाह भी मिलते हैं।

घास पारिस्थितिकी तंत्र

भूमध्यरेखीय एवं मानसूनी वनों के उत्तर एवं दक्षिणी की ओर वर्षा की मात्रा निरन्तर कम होती जाती है। नदियों की घाटियों के अतिरिक्त क्षेत्रों में जलाभाव के कारण वृक्ष कम उगते हैं। अपर्याप्त एवं गर्मी में वर्षा के कारण जल का वाष्पीकरण तीव्र होता है। वृक्षों को उगने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं हो पाता। इन भूभागों में बहुसंख्यक वनस्पतियाँ घास के रूप में उगती हैं। ये घासें गुच्छे के रूप में उगती हैं। घास वाले क्षेत्रों को अपेक्षाकृत अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पतझड़ मानसून वन मिलते हैं तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कंटीली वनस्पतियों की अधिकता होती है। अधिकांश घासों की लम्बाई 1-2 के मध्य होती है। उष्ण कटिबन्धों में पायी जाने वाली घासों को सवाना कहा जाता है। मध्य अक्षांश शीतोष्ण कटिबन्धों में विस्तृत लम्बी घासों को प्रेयरी एवं छोटी घासों को स्टेपी नाम दिया गया है।

1. **सवाना:** इन घासों का विस्तार उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में पाया जाता है। इन घासों के नाम पर इन क्षेत्रों की जलवायु को सवाना जलवायु प्रदेश कहते हैं। इनका विस्तार 30° उ. अक्षांश से 30° द. अक्षांश के मध्य पाया जाता है। सूडान, बेनुजुएला, कोलम्बिया ओरीनिको नदी की घाटी, ब्राजील के दक्षिणी भूभाग एवं ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग सवाना घासों से आच्छादित हैं। इन क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु में वर्षा

होती है तथा इसकी कोई निश्चित मात्रा नहीं होती। इन घासों की लम्बाई 15' तक होती है। ये घास वर्षा के समय बढ़ती है तथा हरी-भरी रहती है। इन घासों के मध्य छोटी-छोटी पत्तियों वाले कांटेदार छतरीनुमा वृक्ष पाये जाते हैं। नदियों की घाटियों में घास हरी-भरी दिखाई देती है तथा वृक्षों की भी अधिकता होती है। इन घासों के मध्य बबूल, ताड़, इमली एवं खजड़ी के वृक्ष पाये जाते हैं। सवाना घासें बसन्त, शीत एवं शरद ऋतुओं में सूख जाती हैं। इन घास के मैदानों को ओरीनीको घाटी में लानोज (Lanos), ब्राजील में कम्पोज (Compos) तथा अफ्रीका में बाढ़ वाले क्षेत्रों में पार्क लैण्ड (Park Land) कहते हैं। सवाना घासों की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। कमेलिटा घास की प्रजाति की 900 जातियाँ तथा 13000 उपजातियाँ पायी जाती हैं। लिगुमिनाशा घास प्रजाति की 500 जातियाँ तथा 12000 उपजातियाँ हैं। ये घास पशुओं के खाने योग्य नहीं होती। पत्तियों में तेज धार होने के कारण ये जीभ काट लेती हैं। विषैले कीटों के दंश के कारण पशु बीमार हो जाते हैं। ये घास जब सूख जाती हैं तो बादामी रंग की दिखायी देती हैं।

2. **प्रेयरी घास:** इनका विस्तार संयुक्त राज्य अमेरिका के टेक्सास राज्य से लेकर कनाडा के मैनीटोवा राज्य तक, अर्जेन्टाइना में 64° प. देशान्तर से पूरब की ओर समुद्र तट तक, यूरेशिया में हंगरी-रूमानिया-यूक्रेन से होता हुआ दक्षिणी भागों में तथा पश्चिमी चीन के कतिपय क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रेयरी घास का विस्तार मध्य अक्षांशों में मिलता है। ये घास सघन एवं मुलायम होती हैं। इन घासों के मध्य वृक्ष नहीं मिलते तथा इनकी ऊँचाई 5-10' तक होती है। इन घासों की जड़ें जमीन में नीचे तक प्रवेश कर जाती हैं। ग्रीष्मकाल में ये घास सूख जाती हैं तथा सम्पूर्ण क्षेत्र भूरा दिखाई देता है। नदियों की घाटियों एवं सापेक्षतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में छिटपुट वृक्ष दिखाई देते हैं।
3. **स्टेपी घास:** इन घासों का विस्तार अर्द्धशुष्क पश्चिमी एशिया, चीन, मंगोलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। मध्य अक्षांशों में अर्द्धशुष्क जलवायु के कारण घासों का उद्भव होता है। ये घास छोटी तथा विरल होती हैं। इनमें ऊँची होने वाली

तथा धरातल पर फैलने वाली दोनों प्रकार की घासें पायी जाती हैं। इनकी जड़ें सापेक्षतः कम गहरी होती हैं। इन घासों का परिक्षेत्र सवाना तथा प्रेयरी के कम वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। एशिया महाद्वीप के शंकुधारी या टैगा वनों के दक्षिण तथा मरुभूमियों के उत्तर स्टेपी घासें उगती हैं। इनकी ऊँचाई 1-3' तक होती है। इन घासों के मध्य वृक्ष नहीं मिलते। ग्रीष्म ऋतु में ये घासें सूख जाती हैं।

मरुस्थल पारिस्थितिकी तंत्र

विश्व के 1/6 वें भू-भाग पर मरुस्थलों का विस्तार है। मानसूनी प्रदेशों के पश्चिमी भू-भागों में वर्षा की कमी के कारण मरुस्थली वनस्पतियाँ मिलती हैं। मरुस्थल दो प्रकार के होते हैं—(1) उष्ण मरुस्थल (Hot Desert), (2) शीत मरुस्थल (Tundras Desert)। उष्ण मरुस्थलों में उच्च तापमान तथा निम्न वर्षा के कारण वनस्पतियाँ नहीं उगती तथा शीत मरुस्थलों में कम तापमान के कारण वनस्पतियों का अभाव है।

1. **ऊष्ण मरुस्थलीय वनस्पतियाँ (Hot Desert Vegetation):** अति ताप एवं शुष्क वातावरण के कारण शुष्क मरुस्थलों में कांटों युक्त, मोटी पत्ती, मोटी छाल तथा लम्बी जड़ों वाली वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। इन वनस्पतियों में विविधता पाई जाती है। नागफनी (Cactus), क्रियोसोट (Creosote), सेजब्रुश (Sagebrush) आदि उत्तरी अमेरिका के उष्ण मरुस्थलों में उगते हैं। सैक्साल (Saxsaul), यूकेलिप्टस (Eucalyptus), एवं एकेशिया (Acacia), क्रमशः एशिया, ऑस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के मरुस्थलों की वनस्पतियाँ हैं। ये वनस्पतियाँ 2' से 20' तक ऊँची होती हैं। इन मरुस्थलों के कतिपय क्षेत्रों में सरपत या कुश सदृश घासें उगती हैं। भूमध्यसागरीय क्षेत्रों के निकटवर्ती मरुस्थलों में कंटीली झाड़ियाँ पायी जाती हैं। मरुस्थलों के मध्य में बबूल, बैर, खेजड़ा जैसे कांटेदार वृक्ष मिलते हैं। मरुस्थलों में जहाँ जल स्रोत हैं, वहाँ मरुद्यानों में ताड़-खजूर के वृक्ष पाये जाते हैं।

2. **शीत मरुस्थलीय वनस्पति (Vegetation of the Tundras):** शीत मरुस्थलों में कठोर सर्दी पड़ती है। ग्रीष्मकाल अल्पकाल का होता है। शीत ऋतु में धरातल हिमाच्छादित रहता है। फलतः वनस्पतियाँ उग नहीं पाती हैं। ग्रीष्म प्रारम्भ होते ही द्रुतगति से बढ़ने वाली घासें उगती

हैं। इनमें रंग-रंग के पुष्प खिलते हैं तथा अत्यन्त सुन्दर छटा बिखेरते हैं। इन वनस्पतियों का जीवन अल्पकाल का होता है। गर्मी के साथ-साथ ये वनस्पतियाँ समाप्त हो जाती हैं। अध्येताओं का मानना है कि शीत मरुस्थलों की वनस्पतियों का जीवन मात्र 15 दिनों तक का होता है। कोई तथा लिचेन यहाँ की प्रमुख वनस्पतियाँ हैं। टैगा क्षेत्रों की ओर औल्डर, सेज, सेवार, ब्लूवैरी, विल-बैरी मिलती है। इन्हें झाड़ी वाला टुन्ड्रा (Bush Tundras) कहा जाता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में ऊँचाई के अनुरूप वनस्पतियों में भिन्नता दिग्दर्शित होती है। ऊँचाई के अनुसार तापान्तर होता चला जाता है तथा आर्द्रता में भी अन्तर पाया जाता है। यदि हिमालय की वनस्पतियों का वितरण देखा जाय तो विदित होता है कि निचले हिस्सों में चौड़ी पत्ती वाली वनस्पतियाँ हैं। इनकी पत्तियाँ ग्रीष्म ऋतु के पहले गिरती हैं परन्तु ऊपरी भागों में कोणधारी वन हैं। इन वृक्षों में वर्ष भर कोपलें निकलती हैं तथा पत्तियाँ गिरती हैं। सबसे ऊपरी भाग में घासें पायी जाती हैं।

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

जल जीव मण्डलीय तंत्र में सभी प्रकार के जीवन के लिए अति आवश्यक तत्व हैं। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में जीवों एवं

वनस्पतियों का वास स्थान होता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में-सागरीय जल पारिस्थितिकी, तथा स्वच्छ जल पारिस्थितिकी के दो वर्ग बन जाते हैं। सागरीय जल एवं स्वच्छ जल की गुणवत्ता में भिन्नता होती है।

1. सागरीय जल पारिस्थितिकी तंत्र

सागरीय जल में जल विस्तार, तापमान, गतिशीलता एवं लवणता के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु एवं वनस्पतियों का विकास होता है। जैव विकास की दृष्टि से जल की ऊपरी सतह अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। ऊपरी सतह प्रकाशित मण्डल होता है। इस पर घासों एवं शैवाल (प्राथमिक उत्पादक) अधिक उत्पन्न होते हैं। इसी भाग में जल जीव भी प्रचुर मात्रा में निवास करते हैं। प्रकाशित मण्डल (Photic Zone) 200 मीटर की गहराई तक पाया जाता है। इसी भाग में प्लैक्टन उद्भूत होते हैं। 200 मीटर से अधिक गहरे सागरीय भाग को अप्रकाशित मण्डल (Aphotic Zone) कहा जाता है। इस भाग में निवास करने वाले जीवों को नेक्टन (Nekton) कहते हैं। सागर के तलहटी में निवास करने वाले जीवों को बेन्थस (Benthos) कहा जाता है।

सागरीय गहराई	जीव-वनस्पति	विशेषता
प्रकाशित मण्डल ऊपरी सतह	प्लैक्टन	ये जल में तैरते हैं जैसे-सूक्ष्म जीवी पादप
अप्रकाशित मण्डल	नेक्टन	बड़े आकार तैरने वाले जीव जैसे मछलियाँ
नितलीय मण्डल	बेन्थस	जन्तु एवं वनस्पति दोनों के गुण, जैसे मांसाहारी घोघा, कोरल, शंख, सीपी

सागरीय जल की आवासीय परिस्थितिकी में परिवर्तन के फलस्वरूप मछलियाँ एवं अन्य जीव-जन्तु स्थान परिवर्तन करते रहते हैं। जल धाराओं तथा जल की गतिशीलता के कारण पोषक तत्व ऑक्सीजन एवं प्लैक्टन प्रवाहित होते रहते हैं जो मछलियों के लिए अनुकूल होते हैं।

सागरीय पारिस्थितिकी में प्लैक्टन समुदाय सागर के ऊपरी सतह पर विकसित होते हैं। इनके दो वर्ग हैं-(1) फोटो (प्रकाश संश्लेषी) प्लैक्टन (2) जू (प्राणि) प्लैक्टन। प्रकाश संश्लेषी प्लैक्टन प्राथमिक उत्पादक होते हैं। शैवाल एवं डायटम इस वर्ग के प्रतिनिधि पौधे हैं। इन पौधों का तीव्र विकास सामान्य ताप

वाले सागरीय क्षेत्र में होता रहता है, इसे सागरीय जीव खाते हैं। प्राणी प्लैक्टन में शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों पाये जाते हैं। शाकाहारी प्लैक्टन मांसाहारी प्लैक्टन के आहार होते हैं। मांसाहारी प्लैक्टन मछली एवं अन्य जीवों के भोज्य पदार्थ होते हैं। नेक्टन समुदाय गहरे जल में पाये जाते हैं। नेक्टन में स्तनधारी उभयचर (जल + स्थल) जीव भी होते हैं। ज्ञातव्य है कि इन जीवों में रीढ़ की हड्डी होती है। ह्वेल, सील, कॉर्ड मछलियाँ नेक्टन समुदाय की सागरीय जीव है। बेन्थास समुदाय में वनस्पति एवं जीवों के मिश्रित गुण मिलते हैं। ये समुद्र की तलहटी में निवास करते हैं। शंख, सीपी, घोघा, वेन्थास समुदाय के जीव है। ये

शाकाहारी एवं मांसाहारी होते हैं। भोजन के लिए सागर तल पर चले आते हैं।

सागरीय जल पर तैरते कतिपय पक्षी सागरीय परितन्त्र में परजीवी जन्तु माने जाते हैं। ये समुद्री जीवों का भक्षण करते हैं। पादप प्लैक्टन सागरीय जीव जन्तुओं को भोज्य पदार्थ उपलब्ध कराते हैं। ये प्राथमिक उत्पादक होते हैं। सागरीय जीव रात्रि में सागर तल पर आहार प्राप्त करते हैं और दिन में तलहटी पर चले जाते हैं। सील (Seal) मछली स्थल पर जनन करती है तथा भोज्य पदार्थ जल से प्राप्त करती है। इस प्रकार सागरीय पारिस्थितिकी अत्यन्त जटिल है।

2. स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

तालाब का पारिस्थितिकी तन्त्र (Pond Ecosystem):

तालाब का परितन्त्र स्वच्छ जल परितन्त्र का एक उपवर्ग है। इसके दो घटक क्रमशः (i) अजैविक तथा (ii) जैविक होते हैं। अजैविक घटक के रूप में सूर्य ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। इसी स्रोत से ऊर्जा का स्थानान्तरण तालाब के जीवों एवं वनस्पतियों में होता रहता है। विभिन्न खनिज एवं गैसें (CO_2 , O_2) जल में घुली रहती हैं। तालाब के धरातलीय पदार्थ भी जल में मिश्रित होते रहते हैं। अजैवीय घटक इस परितन्त्र का नियमन एवं नियन्त्रण करते रहते हैं। परितन्त्र के जैविक घटक उत्पादक, उपभोक्ता, तथा अपघटक प्राकृतिक नियमों के अनुरूप इसे नियन्त्रित एवं नियमित करते हैं। उत्पादक पादप-प्लवक तथा काइटो प्लेक्टन जैसे सूक्ष्म पौधे, तैरने वाले पौधे तथा जलकुम्भी, सिंघाड़ा, पिस्टिया आदि, जल के अन्दर के पौधे हाइड्रिला, वेलिसनेरिया, स्पाइरोगाइरा, आदि प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोज्य पदार्थों का संचयन करते हैं तथा उत्पादकों द्वारा प्रकाश ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होती रहती है।

उत्पादक पादपों से प्राथमिक उपभोक्ता अपना भोजन प्राप्त करते हैं। जन्तु प्लावक यथा कीटों के लार्वा, कोपयेड अपना भोजन जल के पौधों से ग्रहण करते हैं। तालाब के तट में निवास करने वाले जीव एनिलीडा, मोलस्का भी शाकाहार करते हैं। मछलियाँ, मेंढक एवं शृंग आदि जल के प्राथमिक जीवों को अपना आहार बनाते हैं। ये जीव मांसाहारी होते हैं। इन्हें द्वितीयक उपभोक्ता कहते हैं। बत्तख, बड़ी मछलियाँ, बगुला आदि द्वितीयक उपभोक्ता होते हैं। मृतोपजीवी मृतक जीवधारियों के अवशेष को विघटित कर सरल तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं। कवक एवं

जीवाणु अपघटक कहे जाते हैं। अपघटकों द्वारा विघटित सरल तत्व वृक्षों के माध्यम से जीवधारियों में प्रवेश करते रहते हैं। तालाबों की पारिस्थितिकी जीव जन्तुओं के विकास को सुनिश्चित करती है। प्रदूषण के कारण वनस्पतियाँ एवं जीव प्रभावित होते हैं। जल की जीवनदायिनी शक्ति के क्षरण के साथ पारिस्थितिकी का हास होने लगता है। तालाब की उत्पादकता प्रभावित होने लगती है। असंतुलित पारिस्थितिकी से जीवों का विनाश होने लगता है। विषाक्त रसायनों से तालाबों का जल प्रदूषित होता जाता है, फलतः जीव जन्तु समाप्त हो जाते हैं। साथ ही जैविक एवं अजैविक तंत्रों की अधिकता के कारण पौधों एवं जीवों की संख्या में अनियंत्रित वृद्धि हो जाती है।

सरिता पारिस्थितिकी तन्त्र (River Ecosystem):

जल वर्षण से सरिताओं का जन्म होता है। इन सरिताओं में अनेक जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों का जीवन चक्र चलता रहता है। इस पारिस्थितिकी तंत्र के जैव एवं अजैव दोनों घटक सक्रिय रहते हैं। इसके जल में अनेक अजैव तत्व घुले रहते हैं। सतही जल के रूप में वर्षा का जल प्रवाहमान होता है जो मिट्टी एवं चट्टानों के अनेक तत्वों को घोलते हुए आगे बढ़ता जाता है। पारिस्थितिक तंत्र के संचालन में अजैव तत्व सूर्य प्रकाश के साथ जैव तत्वों में पहुँचता रहता है। ये जैव तत्व जल के ऊपरी भाग तथा किनारे विद्यमान रहते हैं। कतिपय जीव एवं पौधे जलमग्न रहते हैं। प्रकाश संश्लेषण से पौधों का पोषण होता रहता है। ये पौधे प्राथमिक उपभोक्ताओं को भोजन प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् प्राथमिक से द्वितीय, द्वितीय से तृतीय एवं आगे की आहार शृंखला बनती जाती है। आज ये नदियाँ अपनी जीवनदायिनी क्षमता खोती जा रही हैं। यद्यपि नदियों के जल में स्वयं शुद्धीकरण की क्षमता होती है किन्तु किन्हीं क्षेत्रों में मानव समुदाय की सामाजिक आर्थिक प्रगति के फलस्वरूप वाही जल की शुद्धि नहीं हो पाती है। औद्योगिक नगरीय एवं कृषि अपशिष्टों के कारण जल प्रदूषित हो जाता है। अनेक रासायनिक तत्वों के कारण जल की प्राकृतिक गुणवत्ता विनष्ट होती है। इस प्रकार से सरिता जल प्रदूषित हो जाता है, जिससे सरिता की जीवनदायिनी क्षमता नष्ट होने लगती है। यद्यपि यह जल गतिशील होता है, और सागर में जा मिलता है तथा सागरीय जल की पारिस्थितिकी को प्रभावित करता है। प्रदूषित जल ज्वारनदमुख (एस्चुअरी) के प्राकृतिक जीव जगत को भी विनष्ट करता है। ज्वारीय तरंगें ज्वार नदमुखों को भर देती है तथा ज्वारीय मैदान का निर्माण करती

हैं। ये ज्वारीय स्थल पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये ज्वार नदमुख मछलियों के लिए आदर्श अनुकूल पारिस्थितिकी का सृजन करते हैं। मानव के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण ये ज्वार नदमुख भी नष्ट हो रहे हैं। प्रदूषित नदियों का जल ज्वार में पहुँचने पर पारिस्थितिकी की उत्पादकता को हासोन्मुखी बना देता है। सामान्यतः मानव खाद्य के रूप में पायी जाने वाली मछलियाँ कम होने लगती हैं तथा अन्य जीव जन्तु भी प्रभावित होते हैं।

पारिस्थितिकी पिरामिड

पारिस्थितिक तंत्र की खाद्यशृंखला में प्रथम से उच्च पोषण स्तरों में जातियों की संख्या, जैवमास, एवं संचित ऊर्जा की प्राप्यता में क्रमशः कमी होती जाती है। प्रथम पोषण स्तर में बायोमास, संचित ऊर्जा एवं जातियों की संख्या अधिकतम होती है तथा द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पोषण स्तर में सापेक्षतः बायोमास, संचित ऊर्जा एवं जातियों की संख्या की उपलब्धता में उत्तरोत्तर कमी होती जाती है। यह अन्तरसंबंध रेखीय आकार में पिरामिड के सदृश होता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं की संख्या, बायोमास एवं संचित ऊर्जा की प्राप्यता के रेखीय चित्रण को पारिस्थितिकी पिरामिड कहा जाता है। संख्या बायोमास एवं ऊर्जा की दृष्टि से पिरामिड तीन प्रकार के होते हैं—

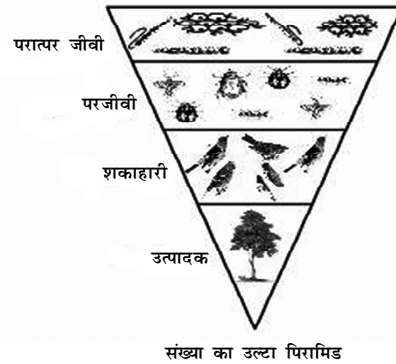
जातियों की संख्या का पिरामिड

(Number Pyramid)

आहार शृंखला प्राथमिक पोषण से उच्च पोषण स्तर की ओर बढ़ने पर जीवों की संख्या घटती जाती है। सी एल्टन के नियम के अनुसार आहार शृंखला के आधार पर सबसे नीचे प्राणी अधिक होते हैं और ऊपर के स्तर में इनकी संख्या कम होती चली जाती है। उदाहरणार्थ, प्रथम पोषण स्तर में वनस्पतियों की अनगिनत संख्या होती है। उस पर निर्भर हिरण का पोषण असंख्य घासों से होता है। इस प्रकार वनस्पतियों की संख्या अधिक तथा उस पर निर्भर हिरणों की संख्या कम होती है और हिरणों का भक्षण करने वाले सिंहों की संख्या और भी कम होती है। घास के मैदान एवं कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र में उपभोक्ताओं की संख्या में उत्तरोत्तर कमी होती जाती है तथा पिरामिड सीधा बनता है।



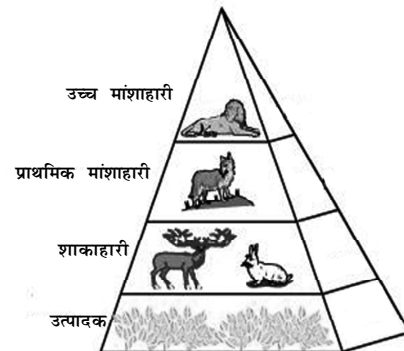
वृक्ष परितंत्र का पिरामिड उल्टा दिग्दर्शित होता है। वस्तुतः वृक्ष एक उत्पादक इकाई होता है। इस पर निर्भर पक्षियों की संख्या बढ़ जाती है और पक्षियों की संख्या से उनके शरीर पर पाये जाने वाले परजीवियों की संख्या बढ़ती जाती है।



संख्या का उल्टा पिरामिड

बायोमास का पिरामिड (Biomass Pyramid)

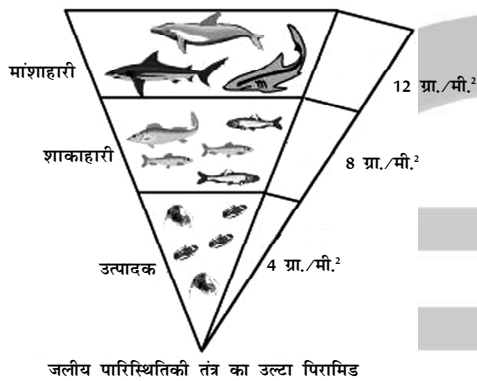
पारिस्थितिकी तंत्र में प्रति इकाई क्षेत्र में पाये जाने वाले



स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के जीव भार का सीधा पिरामिड

जीवधारियों का सम्पूर्ण शुल्क भार परितन्त्र का जीव भार कहा जाता है। स्थलीय परितन्त्र के उत्पादक का जीवभार भोजन शृंखला के प्रत्येक स्तर के उपभोक्ताओं से अधिक होता है, फलतः पिरामिड सीधा बना रहता है।

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक पादप प्लवक एवं डायटम जीवभार शाकाहारी मछलियों से कम होता है। जलीय परितन्त्र का जीवभार पिरामिड उल्टा दिग्दर्शित होता है।



ऊर्जा का पिरामिड

ऊर्जा पिरामिड सीधा बनता है क्योंकि परितन्त्र के विविध पोषक स्तरों पर 90% ऊर्जा व्यय हो जाती है तथा शेष 10% ऊर्जा ही उच्च स्तर की ओर पहुँच पाती है। अतः प्रत्येक पोषक स्तर पर ऊर्जा की मात्रा में कमी होती जाती है तथा निम्न से उच्च पोषक स्तर की ओर जीवों की संख्या भी कम होती चली जाती है।

पोषण स्तर

किसी पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह या पोषण प्रवाह का एक क्रम होता है या पदानुक्रम होता है जो कई स्तरों में सम्पन्न होता है। इसे ही पोषण स्तर कहा जाता है। अर्थात् जिस बिन्दु पर इस ऊर्जा का एक जीव से दूसरे जीव में स्थानान्तरण होता है उसे पोषण स्तर कहते हैं।

- **पोषण स्तर 1-** आहार शृंखला में आधार स्तर पर स्वपोषित या प्राथमिक उत्पादक होते हैं जिसमें हरे पौधे को भी सम्मिलित करते हैं।
- **पोषण स्तर 2-** पोषण स्तर 2 के जीव अपना भोजन स्वयं निर्मित नहीं करते इसके अन्तर्गत जो प्राणी शाकाहारी होते

हैं उन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहते हैं।

- **पोषण स्तर 3-** इसके अन्तर्गत माँसाहारी प्राणी आते हैं। इन्हें द्वितीयक उपभोक्ता कहते हैं।
- **पोषण स्तर 4-** सर्वाहारी जन्तुओं को शामिल किया जाता है जो निचले तीनों स्तरों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भोजन ग्रहण करते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण मानव प्राणी है।

पारिस्थितिकी तंत्र में अजैविक घटकों के प्रति जैविक घटकों की अनुक्रियायें

पृथ्वी पर तापमान, प्रकाश का वितरण, मृदा की बनावट, वर्षा का प्रतिरूप एक जैसा नहीं हैं। कहीं गर्मी से झुलसते स्थान हैं तो कहीं शून्य से भी नीचे तापमान होता है। कहीं घनघोर बारिश होती है तो कहीं बिल्कुल कम बारिश होती है। कहीं प्रचण्ड हवायें चलती हैं तो कहीं हवा का दबाव अत्यन्त कम होता है।

तात्पर्य है कि पृथ्वी पर स्थित विविध परितन्त्रों में जीने लायक अनुकूल स्थितियाँ हैं तो चरम परिस्थितियाँ भी हैं जहाँ जीवन अत्यधिक कठिन होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जैविक समुदाय अत्यधिक दबाव एवं परम स्थितियों में जीवित रहने के लिए कई सारी युक्तियों का सहारा लेते हैं अर्थात् विविध अनुक्रियायें करते हैं। चरम स्थिति के प्रति जीवों के विविध अनुक्रियाओं को निम्न बिन्दुओं के तहत देखा जा सकता है:-

1. **समस्थापन (Homeostasis):** यह ऐसी स्थिति है जिसमें जीव लम्बे समय में स्थायी आंतरिक पर्यावरण विकसित कर लेते हैं। वे शरीर का तापमान तथा तरल पदार्थों का सांद्रण वाह्य परिस्थितियों के विपरीत कर स्वयं को ढाल लेते हैं।
2. **नियमन करना (Regulate):** इसके तहत जीव शरीर के तापमान एवं परासरण को एक निश्चित बिन्दु पर ढाल लेते हैं चाहे वे अंटार्कटिक में रहे या सहारा में रहे। मानव द्वारा अपने शरीर का तापमान 37°C रखना नियमन का ही उदाहरण है। शरीर नियमन द्वारा ही गर्मी में पसीना निकाल कर जाड़े में कंपन कर तापमान को अनुकूलित करता है।
3. **संरूपण करना (Conform):** अधिकांश जीव अपने शरीर का तापमान एक निश्चित बिन्दु पर नियमित नहीं

कर पाते जब वे संरूपण की क्रिया अपनाते हैं। इसके तहत जीव अपने शरीर का तापमान बाह्य परिवेश के तापमान के अनुसार बदलते रहते हैं। जल में रहने वाले अधिकांश प्राणी एवं पादप इसी विधि को अपनाते हैं।

4. **प्रवास करना (Migrate):** जब परिवेश ज्यादा प्रतिकूल दबाव में हो जाता है तो जीव अधिक बेहतर क्षेत्रों में प्रवास कर जाते हैं। जैसे-ग्रीष्म ऋतु में साइबेरिया के कड़ाके के ठण्ड से बचने के लिए बहुत सारे पक्षी पक्षी हर वर्ष भारत की ओर प्रवास करते हैं तथा अनुकूल मौसम पर वापस चले जाते हैं।
5. **निलंबित करना (Suspend):** कुछ जीव अपने विपरीत परिवेश के प्रति निलंबित करने का गुण अपनाते हैं। अर्थात् प्रतिकूल परिस्थिति में निष्क्रिय हो जाते हैं तथा अनुकूल स्थिति आने पर सक्रिय हो जाते हैं। अत्यधिक ठण्ड से बचने के लिए शीतनिष्क्रियता (हाइबर्नेशन) तथा अत्यधिक गर्मी से बचने के लिये कुछ घोंघों एवं मछलियों द्वारा ग्रीष्म निष्क्रियता (अस्टिवेशन) को अपनाकर निलंबित करने का ही गुण है। एक मौसमी तालाब जब सूख जाता है तो अनेक पौधे एवं कवक यही विधि अपनाते हैं। कुछ पौधों, जीवाणुओं एवं कवकों में मोटी भित्ति वाले बीजाणु का बनना निलंबित करने का अन्य उदाहरण है।
6. **अनुकूलन (Adoptation):** अपने आवास में जीवित रहने के लिए जीव अनुकूलन की प्रक्रिया को अपनाते हैं। अधिकांश मामलों में अनुकूलन अल्पकाल में न होकर लम्बे समय में होता है और धीरे-धीरे यह आनुवांशिकता स्थिर हो जाता है। अनुकूलन के कई उदाहरणों को निम्नवत देखा जा सकता है-

(क) मरुस्थलों में रहने वाले अधिकांश पादप तथा जन्तु अनुकूलन की युक्ति द्वारा जीवित रहने का ढंग ढूँढ लेते हैं। अनेक मरुस्थली पौधों की पत्तियों की सतह पर मोटी उपत्वचा (क्यूटिक) होती है तथा रंध्र गहराई तक होते हैं ताकि वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल की हानि कम से कम हो। उनके प्रकाश संश्लेषी मार्ग विशेष प्रकार के होते हैं। कुछ मरुस्थली पादपों जैसे- नागफनी, कैक्टस आदि में पत्तियाँ कांटों के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं तथा प्रकाश संश्लेषण चपटे तनों द्वारा होता है।

इनकी जड़ें भी गहराई तक गयी होती हैं ताकि पानी को लम्बे समय तक संरक्षित किया जा सके। इसी तरह मरुस्थली जन्तु अपने मूत्र को सान्द्रित कर जल हानि को रोकते हैं। जल की आपूर्ति आंतरिक वसा का ऑक्सीकरण कर सकते हैं।

(ख) ध्रुवीय प्रदेशों के अति ठण्डी जलवायु में रहने वाले जन्तु भी अनुकूलन अपनाते हैं। ठण्डे स्थानों पर रहने वाले जीवों जैसे- भालू तथा पैंग्विन आदि के बाल दो परत (तह) में होते हैं। त्वचा अधिक वसीय तथा मोटी होती है। पैरों की बनावट भी विशेष प्रकार की होती है। इनके कान एवं पाद काफी छोटे होते हैं ताकि उष्मा की हानि न्यूनतम हो। इसे एलन के नियम से भी जाना जाता है।

(ग) कुछ जीव दबावपूर्ण स्थितियों में शीघ्र कार्यक्षम अनुकूलन भी अपनाते हैं तथा दबावपूर्ण स्थितियों को शीघ्रता से सह लेते हैं। जैसे- हम मैदान से अचानक अधिक ऊँचाई (3500 मीटर से ऊपर) पर जायें तो हमें तुंगता बीमारी का अनुभव होने लगता है। इसमें मिचली तथा थकान आती है एवं हृदय स्पन्दन की दर बढ़ जाती है। वायुमण्डलीय दबाव कम होने से शरीर को पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में शरीर लगभग 24 घण्टे के अन्दर शीघ्र अनुकूलन कर लेता है। हमारा शरीर लाल रूधिर कणिकाओं का उत्पादन बढ़ा देता है, श्वसन की दर बढ़ा देता है तथा हीमोग्लोबिन की बंधनकारी क्षमता का घटा देता है अतः कम आक्सीजन मिलने के बावजूद हम शीघ्र वहाँ रहने के लिए अनुकूलित हो जाते हैं। इसी प्रक्रिया का परिणाम है कि ऊँचाई पर रहने वाले लोगों में मैदानी लोगों की अपेक्षा लाल रूधिर कणिकाओं की संख्या (हीमोग्लोबिन) अधिक मात्रा में होती है।

जैविक समुदायों में अन्तर्क्रिया

जैविकीय समुदाय परस्परक्रियाओं का एक बहुत ही सम्मिश्र जाल होता है ये परस्पर क्रियाएँ न केवल एक ही स्पीशीज की समष्टि के विभिन्न व्यष्टियों के बीच होती हैं (अंतःजातीय संबंध, Intraspecific relation) वरन् समुदाय की विभिन्न स्पीशीज के व्यष्टियों के बीच भी होती हैं।

अंतःजातीय संबंध (Intraspecific relations)

एक ही स्पीशीज के सदस्यों के बीच वाली परस्परक्रियाएँ अंतःजातीय संबंध कहलाती हैं और ये संबंध प्रायः बड़े प्रबल होते हैं जो खुले संघर्ष से लेकर यूथिता (gregariousness) अर्थात् सामाजिक परस्परता तक अनेक प्रकार की होती हैं। मूज (mosse) जैसी कुछ स्पीशीज काफी एकल (solitary) होती हैं मगर दूसरी ओर कुछ अन्य स्पीशीज में विभिन्न स्तरों को सामाजिक संघटना भी पायी जाती है। अनेक स्पीशीज में क्षेत्राधिकारिता होती पायी जाती है यानी उसके व्यष्टि अपने आवास के कुछ भाग पर अपना स्वामित्व जमाने के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। विजेता क्षेत्र का उपयोग और हारे हुए को वहाँ से छोड़ कर जाना होता है। क्षेत्राधिकारिता उस क्षेत्र विशेष में किसी एक स्पीशीज के जीवों की संख्या सीमित करती है जिससे आहार और आवास जैसे संसाधनों के लिए विनाशकारी प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है।

अंतःजातीय संबंध स्पीशीज के पदानुक्रम प्रतिरूप में भी अथवा समष्टि के भीतर प्रभावी तथा अधीनस्थ संबंध के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। प्रभावी तथा अधीनस्थ संबंध तब और भी अधिक सुव्यक्त होते हैं जब मैथुन-साधियों के लिए चयन संभावनाएं सामने आती हैं। चरम सामाजिक संघटना दीमकों, चींटियों तथा मधुमक्खियों आदि की कालोनियों (निवहों) में पायी जाती है।

अंतराजातीय संबंध

किसी परितंत्र में कोई भी जीवधारी (पौधे, प्राणी एवं सूक्ष्मजीव) पृथक्ता में उत्तरजीवी नहीं रह सकता। किसी भी जाति के न्यूनतम आवश्यकता एक और जाति की है जिससे वह अन्तर्क्रिया कर सके। वृद्धि, पोषण तथा जनन के लिये एक जाति को दूसरी जाति की आवश्यकता पड़ती है। जैसे वनस्पतियों को सूक्ष्मजीवों की आवश्यकता पड़ती है। पौधों में परागण तथा बीज एवं फल का निस्तारण जीव अभिकर्ता (Bio Agent) के माध्यम से होता है। परजीवी तथा परभक्षी जीवों को दूसरे जीवों की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार विभिन्न जैविक समुदाय विभिन्न तरीके से पारस्परिक क्रिया करते हैं। लेकिन पारस्परिक क्रिया के दौरान जातियों के बीच सम्बन्ध लाभदायक, हानिकारक या उदासीन हो सकता है। इसके तहत पारस्परिक संबंधित दोनों जातियों को लाभ, दोनों को हानि, एक को लाभ तथा दूसरे को कोई लाभ

नहीं हो, ऐसा हो सकता है। जैविक समुदायों के बीच अंतराजातीय संबंध को दो मुख्य भागों में बांटकर देखा जा सकता है:-

1. सकारात्मक अन्तर्क्रियायें

यह अन्तर्क्रिया दोनों पक्षों के लिये लाभदायक होती है। तथा किसी भी जाति को इसमें हानि नहीं पहुँचती। इसके तहत निम्न चार संबंधों को देखा जाता है। यथा-

(क) सहोपकारिता (Mutualism): सहोपकारी सम्बन्ध में दोनों जातियों को लाभ पहुँचता है। इसे निम्नलिखित उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है। यथा-

- दलहनी पौधों की जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले कुछ राइजोबियम जीवाणुओं का वास होता है। जीवाणु कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य पोषक पदार्थों पौधों से प्राप्त करते हैं। बदले में पौधे जीवाणुओं द्वारा संचित किये गये नाइट्रोजन का अपनी वृद्धि के लिए उपयोग करते हैं।
- लाइकेन में शैवाल तथा कवक एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। शैवाल प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन बनाता है जिसका उपयोग कवक करता है तथा कवक शैवाल को जल तथा सुरक्षा प्रदान करता है।
- परागण की क्रिया सहोपकारिता का एक बेहतर उदाहरण है। पुष्प का परागण तथा बीजों का प्रकीर्णन भ्रमर तथा मधुमक्खी सदृश जीव अभिकर्ता करते हैं। बदले में ये पौधों से परागण, कमरंद तथा फल प्राप्त करते हैं।
- सहोपकारिता का एक अन्य उदाहरण कुछ जीवाणुओं का जन्तुओं के आंत में पाया जानना है। आंत में रहने वाले जीवाणु विटामिन B तथा अन्य पदार्थों को स्रावित करते हैं जो प्राणियों के लिए लाभदायक होता है वही प्राणी बैक्टीरिया का पोषण करते हैं।

(ख) सहभोजिता (Commensalism): इस सम्बन्ध में एक जाति को लाभ होता है तथा दूसरे को न लाभ होता है और न हानि होती है। जैसे आम के पेड़ पर अधिपादप के रूप में उगने वाले आर्किड तथा हवेल की पीठ को आवास बनाने वाले वार्नेकल (Suckerfish) को फायदा पहुँचता है लेकिन आम के पेड़ तथा हवेल को उनसे न कोई लाभ होता है और न हानि

होती है। सहभोजिता के कई सारे और उदाहरण हैं जिसे निम्न बिन्दुओं के तहत देखा जा सकता है-

- बगुला तथा चरने वाले पशुओं के बीच हम यही सम्बन्ध पाते हैं, चराई के दौरान पशु पौधों को हिलाते हैं जिससे कीट बाहर हो जाते हैं, जिन्हें बगुले खाते हैं लेकिन पशुओं को बगुला से न हानि होती है और न लाभ होता है।
- समुद्री एनीमोन के छाले के बीच रहने वाली मछली को सुरक्षा मिलती है जेकिन मछली से एनीमोन को कोई लाभ नहीं पहुँचता।
- E - कोलाई जैसे बैक्टीरिया हमारे आंत में पाये जाते हैं जो भोजन खाते लेकिन उनसे हमें न कोई लाभ होता है और न हानि पहुँचती है।
- इसी तरह बहुत सारी गिलहरियाँ, बंदर, साँप, मेंढक, पक्षी आदि पेड़ों पर रहते हैं, आवास बनाते हैं, जनन करते हैं लेकिन पेड़ को इनसे न कोई पहुँचता है और न हानि होती है।

(ग) उपनिवेशन (Colonisation): बहुत सारे जीव, जन्तु, पक्षी तथा एम्फीबियन सुरक्षा तथा पर्यावरण के साथ तालमेल के लिए एक साथ उपनिवेश बनाते हैं तथा परस्पर लाभान्वित होते हैं। उदाहरणार्थ- मधुमखियाँ छत्ते के एक साथ कालोनी बनाकर रहती हैं तथा शहद देने के लिए तापमान का अनुकूलन करती हैं। साथ ही दुश्मन से सुरक्षा करती हैं।

(घ) एकत्रीकरण तथा सामाजिक संगठन (Aggregation and Social organisation): बहुत सारे लार्वा, कीड़े तथा जन्तु एकत्रीकरण तथा सामाजिक संगठन की भूमिका निभाते हैं तथा साथ-साथ पूरे समुदाय की उत्तरजीविता को निश्चित करते हैं। कीड़े, चींटियाँ, मक्खियाँ आदि इसके बेहतर उदाहरण हैं। हम अपने दैनिक जीवन में चींटियों द्वारा श्रम विभाजन कर सामाजिक संगठन का लाभ लेने को बहुधा देख सकते हैं।

(ङ) माइकोराइजा (Mycorrhiza): कवक का किसी पौधे की जड़ के साथ सहजीवन माइकोराइजा कहलाता है। यह दो प्रकार हो होता है- (i) एक्टोट्रोफिक (Ectotrophic) जिसमें कवक जाल जड़ों के धरातल पर मिलता है। तथा (ii) एण्डोट्रोफिक (Endotrophic) जिसमें कवक जड़ों की वल्कुट कोशिकाओं में

फैला रहता है। माइकोराइजा चीड़, आर्किड, लीची, रेफ्लेशियाव अन्य पौधों की जड़ों में पाया जाता है।

2. अन्तर्क्रियायें

नकारात्मक अन्तर्क्रिया में एक जाति को लाभ होता है तथा दूसरे को हानि पहुँचती है या दोनों को हानि पहुँच सकती है। नकारात्मक अन्तर्क्रियाओं के तहत कई सम्बन्धों को देखा जा सकता है यथा :-

(क) परभक्षण (Predation): परभक्षण दो जातियों के बीच ऐसी-क्रिया है जिसमें एक जाति दूसरे को मारकर खा जाती है। शाकाहारियों के लिये मांसभक्षी जैसे- बाघ द्वारा हिरण को मारकर खाया जाना परभक्षण का उदाहरण है। पौधों के लिये शाकाहारी भी परभक्षी ही होता है। जैसे- पौधों के लिये गौरैया परभक्षी है। परभक्षण प्रकृति का ऐसा तरीका है जिसमें ऊर्जा एक स्तर से दूसरे स्तर तक स्थानान्तरित होती है। परभक्षण परितंत्र में जातियों का संतुलन एवं जैवविविधता बनाये रखने में महत्वपूर्ण होता है। लेकिन परितंत्र में परभक्षी को बुद्धिमान माना जाता है, क्योंकि वह शिकार का अतिदोहन नहीं करता।

- परभक्षण द्वारा उस ऊर्जा के विभिन्न पोषण स्तरों में से प्रवाह में सहायता मिलती है जो प्रकाश-संश्लेषी पौधों द्वारा स्थिरीकृत की जाती है।
- परभक्षी किसी समुदाय के भीतर अंतराजातीय प्रतिस्पर्धी की तीव्रता को कम कर सकते हैं क्योंकि वे चयनात्मक रूप में श्रेष्ठतर प्रतिस्पर्धी स्पीशीज का शिकार करते हैं और इस तरह उनके घनत्व को कम बनाए रखते हैं। कमजोर स्पीशीज आवास में बनी रह सकती है।
- परभक्षियों से अनेक जैविकीय समुदायों में स्पीशीज की उच्च विविधता भी कायम बनी रहने में सहायता मिलती है। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि किसी समुदाय से समस्त परभक्षियों को हटा देने पर कुछ स्पीशीज बिल्कुल समाप्त हो गयी तथा स्पीशीज विविधता में एक सामान्य गिरावट भी आयी।

(ख) शोषण (Exploitation): इस सम्बन्ध में एक जाति दूसरे जाति को प्रत्यक्ष रूप से शोषित कर लाभान्वित होती है। जैसे Polyergus जाति द्वारा चींटियों को अपना गुलाम बनाकर शोषित करना।

(ग) प्रतिजीवित (Antibiosis): कुछ जीवों द्वारा कुछ ऐसे उत्पाद उत्सर्जित किये जाते हैं जो स्वयं उनके लिये तथा अन्य जीवों के लिये हानिकारक होता है। जैसे नीले हरे शैवाल जो तालाब में उगते हैं, उनके द्वारा कुछ ऐसे जहरीले पदार्थ उत्पादित किये जाते हैं जो उनको स्वयं कोई लाभ नहीं पहुँचाता लेकिन मछलियाँ एवं अन्य जीव इससे मर जाते हैं।

(घ) परजीविता (Parasitism): परजीविता ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक जीव दूसरे जीव पर निर्भर रहता है। परजीविता दो प्रकार की होती है:-

- इसमें एक जाति को लाभ होता है, लेकिन दूसरी जाति अप्रभावित रहती है। जैसे अमरबेल पौधा तथा मोलस्का प्राणियों में गालकोडियम लार्वा जो मछलियों से जुड़ा रहता है। यह संबंध अस्थायी प्रकार का होता है।

(ङ) प्रतिस्पर्धा (Competition): प्रतिस्पर्धा प्रकृति में प्रायः तब होता है जब आहार, आश्रम स्थान संगमी आदि सीमित हो परंतु, हमेशा ही ऐसा हो यह जरूरी नहीं। संसाधन की सीमितता जिससे प्रतिस्पर्धा पैदा होती है यह डार्विन के जीवन के लिए संघर्ष तथा योग्यतम की उत्तरजीविता की विचारधारा में निहित है। प्रश्न उठता है कि जब दो संबंधी स्पीशीज में एक ही संसाधन के लिए प्रतिस्पर्धा होती है तब क्या होता है? परिणाम क्या निकलेगा यह प्रायः इस बात पर निर्भर होता है कि ये स्पीशीज कितनी 'प्रतिस्पर्धी' है। यदि प्रतिस्पर्धा में एक स्पीशीज श्रेष्ठतर है तो उसके कारण दूसरी स्पीशीज उस आवास से बाहर हो जाएगी और इस परिघटना को 'गौस (Gause) का प्रतिस्पर्धा बाह्यकरण का सिद्धान्त' कहा जाता है और इसका यह नाम रूसी वैज्ञानिक जी.एफ. गौस (G.F. Gause) के नाम पर दिया गया है। यदि दोनों स्पीशीज शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी रहे तब जो परिणाम निकलेगा वह आरम्भिक दशाओं पर निर्भर होगा, एक अनिश्चित एवं अस्थिर सहअस्तित्व संभव है। परंतु यदि दोनों स्पीशीज दुर्बल प्रतियोगी स्पीशीज रही तो दोनों उसी एक आवास में अनिश्चित काल तथा शांतिपूर्ण रूप में अनिश्चित रूप में अनिश्चित काल तक साथ-साथ रह सकती है।

- **अन्तरविशेष प्रतिस्पर्धा (Interspecific Competition):** किसी परितंत्र में सीमित साधनों की स्थिति में भिन्न-भिन्न जीवों द्वारा एक ही भोजन प्राप्ति के लिए संघर्ष अन्तरविशेष प्रतिस्पर्धा कहलाता

है। जैसे शेर एवं बाघ द्वारा शाकभक्षियों के लिए संघर्ष तथा हिरण एवं भेड़ द्वारा वनस्पति चरने के लिए किया गया संघर्ष।

- **अन्तरविशेष प्रतिस्पर्धा (Intraspecific Competition):** यह प्रतिस्पर्धा का चरम रूप है। यह एक प्रजाति के जीवों में होता है। जैसे एक बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को खा जाना।

उत्पादकता

किसी भी परितंत्र के क्रियाशील एवं स्थायी बने रहने के लिये सौर ऊर्जा काफी जरूरी है। सौर विकिरण की उपस्थिति में ही प्रकाश संश्लेषण क्रिया के दौरान प्राथमिक उत्पादक (सभी हरे पौधे, हरी पीली बैक्टीरिया, नीले हरे शैवाल तथा फाइटोप्लैक्टान) अपना भोजन बनाते हैं। उत्पादकों के इस भोजन को हम ऊर्जा (Energy) के रूप में जानते हैं। अतः किसी क्षेत्र में उत्पादकों द्वारा प्रति इकाई क्षेत्र में, प्रति इकाई समय में संचित सकल ऊर्जा की मात्रा को उत्पादकता या प्राथमिक उत्पादन कहते हैं।

इस प्रकार प्राथमिक उत्पादन प्रकाश संश्लेषण के दौरान उत्पादकों द्वारा एक निश्चित समयावधि में प्रति इकाई क्षेत्र के द्वारा उत्पन्न किये गये जैविक मात्रा (कार्बन-सामग्री) की मात्रा होती है। इसे भार (g^2) या फिर ($K Cal m^2$) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

उत्पादकता का मापन

प्राथमिक उत्पादन या उत्पादकता का मापन दो रूपों में किया जाता है-

- 1 सकल प्राथमिक उत्पाद (Gross Primary production) GPP
2. नेट प्राथमिक उत्पादन (Net Primary Production) NPP

पोषण स्तर-1 पर प्राथमिक उत्पादकों द्वारा उत्पन्न संपूर्ण ऊर्जा को सकल प्राथमिक उत्पादन कहते हैं। जबकि पोषण स्तर-1 पर ही उत्पादकों द्वारा श्वसन के खर्च के बाद बचे हुई (संचित) ऊर्जा को नेट-प्राथमिक उत्पादन कहते हैं। इसे हम निम्न रूपों में व्यक्त कर सकते हैं:-

GPP = पोषण स्तर-1 पर उत्पादित सकल ऊर्जा

NPP = GPP – R (श्वसन)

या, GPP – T = NPP

ध्यातव्य है कि Net प्राथमिक उत्पादन ही अगले पोषण स्तर को सुलभ होता है।

द्वितीयक उत्पादकता या नेट समुदाय उत्पादन

द्वितीयक उत्पादकता में उपभोक्ताओं के नये वर्ग (पोषण स्तर एक को छोड़कर) अर्थात् आगे के पोषण स्तर पर कार्बनिक तत्वों के निर्माण की दर को शामिल किया जाता है।

भिन्न-भिन्न पारितंत्रों में प्राथमिक उत्पादकता में अन्तर

पृथ्वी पर स्थिति विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों में प्राथमिक उत्पादकता भिन्न-भिन्न होती है। विषुवत रेखा से ध्रुवों की तरफ

जाने पर (कुछ अपवादों को छोड़कर) प्राथमिक उत्पादकता में कमी होती जाती है। इसी तरह धरातल का लगभग 70% भाग समुद्र का होने के बावजूद, स्थल की अपेक्षा समुद्री पारितंत्र की उत्पादकता कम होती है। भूमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र की प्राथमिक उत्पादकता में स्थानीय, प्रादेशिक एवं विश्वस्तरीय भिन्नता पायी जाती है। भिन्नता के आधार ओडम (1959) ने विश्व को अधोलिखित तीन उत्पादकता स्तरों में विभाजित किया है-

- (i) उच्च पारिस्थितिकी उत्पादकता प्रदेश : उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय वन क्षेत्र, जलोढ़ मैदान, ज्वारनदमुख क्षेत्र, गहन कृषि क्षेत्र आदि।
- (ii) मध्यम पारिस्थितिकीय उत्पादकता प्रदेश : घास क्षेत्र, झीले आदि।
- (iii) निम्न पारिस्थितिकीय उत्पादकता प्रदेश : गम्भीर सागरीय क्षेत्र, मरुस्थलीय प्रदेश, आर्कटिक क्षेत्र आदि।

पारिस्थितिकीय उत्पादकता	
पारितंत्र	औसत नेट प्राथमिक उत्पादकता (शुष्क ग्राम/मी ² /वर्ष)
उष्ण कटिबंध वन	2000
शीतोष्ण कटिबंधी वन	1300
उष्ण सवाना क्षेत्र	700
कृषि क्षेत्र	650
घास क्षेत्र	600
टुण्ड्रा क्षेत्र तथा अल्पाइन	140
खुलेसागर	125
रेगिस्तानी क्षेत्र	03-70
समस्त सागरीय क्षेत्र	155
ज्वारनद मुख	2000
समस्त पृथ्वी (औसत)	320

पारितंत्रीय उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक

किसी भी पारितंत्र की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कुछ कारण निम्नवत हैं:-

1. पारितंत्र में वनस्पतियों की सुलभता एवं उनके ऊर्जा उपयोग की क्षमता।
2. पोषकों की उपलब्धता।
3. जलवायु संबंधी कारक जैसे- तापमान, वर्षा, प्रकाश, मिट्टी एवं जल की उपस्थिति, ढाल एवं गहराई।
4. विभिन्न प्रजातियों के बीच पारस्परिक क्रियायें- सकारात्मक Vs नकारात्मक सम्बन्ध (सहभोजिता, परभक्षण, परजीविता, परस्पर-सहयोग, प्रतिस्पर्धा) आदि।
5. विभिन्न प्रजातियों बीच सामाजिक संगठन तथा सामाजिक पदानुक्रम।

पारिस्थितिकी से संबंधित शब्दावली

- **जनसंख्या पारिस्थितिकी:** इसके अन्तर्गत एक जाति के जीवों के मध्य पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
- **बायोम पारिस्थितिकी:** इसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र विशेष में समान जलवायु संबंधी दशाओं के अन्तर्गत एक से अधिक जैविक समुदायों के अनुक्रम की विभिन्न अवस्थाओं में पारस्परिक क्रियाओं तथा अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।
- **जन्तु पारिस्थितिकी:** इसके अन्तर्गत विभिन्न जन्तुओं के आपसी तथा उनके वातावरण के साथ संबंधों का अध्ययन करते हैं।
- **आवास पारिस्थितिकी:** इसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों के जीवधारियों के आवासों का अध्ययन उनके पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।
- **मानव पारिस्थितिकी:** पारिस्थितिकी की इस शाखा के अन्तर्गत मानव जीवनयापन पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न कारकों का अध्ययन किया जाता है।
- **संरक्षण पारिस्थितिकी:** इसके अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रयोग तथा प्रबन्धन का अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक संसाधनों में वन, वन्यजीव, भूमि, जल, प्रकाश तथा खनिज आदि आते हैं।
- **नेक्टन:** अप्रकाशित मण्डल में रहने वाले जीवों को नेक्टन कहते हैं। किसी सागर में 200 मीटर से अधिक गहराई वाले मण्डल को अप्रकाशित मण्डल कहते हैं, क्योंकि सूर्य की किरणें 200 मीटर के नीचे नहीं जा पातीं।
- **इकोटोन:** दो बायोम के मध्य का संक्रमणकालीन या अति व्यापन का क्षेत्र होता है जिसमें दोनों बायोम के जन्तु तथा पादप पाये जाते हैं।
- **कृषि पारिस्थितिकी:** यह कृषि फसलों और उनके वातावरण के मध्य पारस्परिक संबंधों का अध्ययन है।
- **यूट्रोफिक:** तालाब जैसे वे जल क्षेत्र जिसमें पर्याप्त मात्रा में पोषक पदार्थ होते हैं तथा जो पौधों की तीव्र वृद्धि के लिए उपयुक्त होता है, यूट्रोफिक कहलाता है। यहाँ पौधों तथा जल जन्तुओं की भरमार होने की घटना यूट्रोफिकेशन कहलाती है।
- **पारिस्थितिकी अनुक्रमण:** जब किसी पारिस्थितिकी तंत्र में एक जैव समुदाय का स्थान कालान्तर में दूसरे जैव समुदाय द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है तो उसे पारिस्थितिकी अनुक्रमण कहते हैं।
- **पारिस्थितिकी:** पारिस्थितिकी तंत्र में एक प्रजाति द्वारा दूसरे का अनुक्रमण समय के साथ मंद पड़ जाता है तथा धीरे-धीरे प्रजाति निश्चित स्वरूप प्राप्त कर लेती है जिसमें बदलाव बहुत अल्प होता है, इस दशा को पारिस्थितिकी चरम कहते हैं।
- **पारिस्थितिकीय:** किसी पारिस्थितिकी तंत्र के निर्माण व इसको चलाने में जीवधारी (पौधा या जन्तु) एक निश्चित कार्य करता है और इस तंत्र में प्रत्येक जीवधारी का अपना एक पद (Status) होता है। पारिस्थितिकी तंत्र में एक पौधे या जन्तु के कार्य को पारिस्थितिकी निक (Ecological Niche) कहते हैं।
- **अनुकूलन:** पौधे एक ही स्थान पर स्थिर रहते हैं, फलस्वरूप उन्हें एक निश्चित वातावरण के प्रभाव को सहन करना पड़ता है। वातावरण के प्रभाव से पौधों की रचना एवं आकृति में परिवर्तन हो जाता है जिससे ये वातावरण में होने वाले परिवर्तन को सहन कर सकें। पौधों के इन गुणों को अनुकूलन (Adaptation) कहते हैं।



जीवीय अनुक्रमण (BIOTIC SEQUENCING)



भूमिका

प्रकृति में जैव समुदायों में परस्पर प्रतियोगिता रहती है। ये जीव अपनी आवश्यकताओं की सम्पूर्ति हेतु संघर्ष करते रहते हैं। संघर्ष ही जीवों के विकास का आधारीय पक्ष है। संघर्ष करते हुए जीव अपनी वंशवृद्धि करते हैं परन्तु यह वंश वृद्धि एक स्तर पर स्थिर हो जाती है। इसे किसी जीव के विकास की चरम अवस्था (Climax) कहते हैं। किसी भी जीव की चरम अवस्था अनुक्रमण द्वारा ही प्राप्त होती है। वस्तुतः प्रकृति एवं विविध जीव-जातियों द्वारा सतत् अवरोध उत्पन्न किये जाते हैं। फलतः प्रकृति तथा जीव-जातियों से संघर्ष होने की दशा में कमजोर होने पर जीव शक्तिशाली जीवों की अधीनता स्वीकार करते हैं। विशेष परिस्थितियों में उन्हें स्थान का परित्याग करना पड़ता है। अस्तु अनुक्रमण में एक जाति का शक्तिशाली जीव दूसरी जाति के स्थान पर स्थानापन्न हो जाता है। सामान्यतः एक निश्चित स्थान एवं समय के सन्दर्भ में अनुक्रमण का अध्ययन पारिस्थितिकी अनुक्रमण कहा जाता है। अनुक्रमण एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जो जैव जाति के क्रमबद्ध परिवर्तन का बोध कराती है। इस प्रकार पारिस्थितिकी अनुक्रमण किसी क्षेत्र में एक निश्चित समय में घटित वनस्पतियों एवं जीवों के क्रमबद्ध परिवर्तन को कहते हैं। जैव परिवार एवं प्रक्रिया से किसी क्षेत्र के पर्यावरण में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन अन्य जातियों के प्रतिकूल हो जाता है। ऐसी स्थिति में उस क्षेत्र में अनुकूलन करने वाली जैव-जातियों का आगमन हो जाता है। कालान्तर में इसी प्रकार तीसरी जाति का आगमन हो जाता है। एक जाति का वातावरण में परिवर्तन का पुनः दूसरी जाति से अनुकूलन एवं परिवर्तन करने का क्रम

निरन्तर चलता रहता है। इससे पारिस्थितिकी तंत्र में सक्रियता एवं जीवन्तता बनी रहती है। उल्लेखनीय है कि जीवों की अनुक्रमणीय परिवर्तन की गति सदा एक-सी नहीं रहती। अनुकूलन के जैविक गुण, अनुकूलन क्षमता, वातावरण परिवर्तन एवं कालिक परिवर्तन अनुक्रमण को प्रभावित करते हैं। यदि किसी क्षेत्र की जलवायु में परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन कुछ जीवों एवं पौधों के लिए प्रतिकूल एवं कतिपय के लिए अनुकूलन हो जाता है। जिन जीवों एवं वनस्पतियों में परिवर्तन की क्षमता नहीं होती, विनष्ट हो जाते हैं। उनके स्थान पर नये जीवों एवं वनस्पतियों का अभ्युदय होने लगता है। प्रकृति की क्षमता के अनुरूप सक्रिय परिवर्तन अनुक्रमण का मूल आधार है। अनुक्रमण के परिप्रेक्ष्य में ओडम ने बताया है कि- (1) जैव जातियों का अनुक्रमणीय परिवर्तन निर्धारित क्रम में होता है, (2) अनुक्रमण जैव विकास का आधार है। यह जैव जाति के पर्यावरणीय परिवर्तन से सम्बद्ध प्राकृतिक व्यवस्था है, (3) अनुक्रमण पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता का संकेत है। स्थिरता में जैवभार सर्वाधिक होता है।

क्लीमेण्ट्स ने वनस्पति के अनुक्रमिक विकास में पांच प्रावस्थाओं का उल्लेख किया है-

1. स्थिरी करण (Stabilisation)

जातियों की जनसंख्या का अंतिम समस्थिति की दशा को प्राप्त करना। यह समस्थिति स्थानीय एवं प्रादेशिक आवास की संतुलित दशाओं के संदर्भ में होती है।

2. प्रतिक्रिया (Reaction)

विकसित पौधों के मध्य प्रतिस्पर्धा तथा उसका स्थानीय आवास पर प्रभाव।

3. विवस्त्रीकरण (Nudation)

सर्वप्रथम किसी भी प्रकार की वनस्पति से रहित नग्न क्षेत्र का निर्माण।

4. प्रवास (Migration)

अन्य क्षेत्र से पौधों के बीजों का आगमन।

5. आस्थापन (Ecesisi)

पौधों के बीजों की स्थापना तथा उसका स्थानीय आवास पर प्रभाव।

विभिन्न वनस्पति-समुदायों का विकास विभिन्न आवासों में होता है, अतः प्रकारों के आधार पर अनुक्रम की क्रमिक अवस्थाओं को निम्न प्रकारों में विभक्त करते हैं।

1. जलक्रमक (Hydrosere) तर (जलीय) अवस्थिति यथा: दलदल झील के किनारे आदि में होता है।
2. शुष्कक्रमक में वनस्पति का अनुक्रम शुष्क रेगिस्तानों में बालुकास्तूपों पर होता है।
3. स्थलक्रमक नग्न शैलों पर होता है जहां पर वाष्पीकरण की अधिकता के कारण शुष्क पर्यावरण रहता है।

जीवीय अनुक्रमण के कारक

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में वनस्पति समुदाय का विकास निम्न कारकों द्वारा प्रभावित तथा नियंत्रित होता है

जलवायु कारक (Climate Factors)

किसी भी प्रदेश में किसी भी पादप के लिए उस प्रदेश की वृहदस्तरीय जलवायु का उतना महत्व नहीं होता है जितना कि उस पादप के आस-पास यानी पड़ोस की लघुस्तरीय जलवायु का महत्व होता है। जैसे- तापमान, प्रकाश, मृदा में नमी, आर्द्रता आदि।

मृदीय कारक (Edaphic Factors)

स्थान विशेष की मिट्टियों के पौधों के लिए महत्व रखने वाले गुण यथा पोषक तत्व, मृदा-गठन, मृदा संरचना (अम्लता तथा क्षारीयता आदि)।

भौतिक कारक (Physiographic Factors)

धरातल का स्वरूप, ऊंचाई, ढाल-कोण, ढाल-पहलू आदि।

जैविक कारक

जीवित पौधों का स्थान विशेष के पौधों पर प्रभाव, मुख्य रूप

से प्राणी तथा मानव का प्रभाव। अन्य पौधों द्वारा स्थान, पोषक आहार तथा जल के लिए प्रतिस्पर्धा।

अग्निकाण्ड

स्वभावज वनाग्नि तथा मानव द्वारा अनजाने में तथा जान-बूझ कर वनों को जलाना।

अनुक्रमण के प्रकार

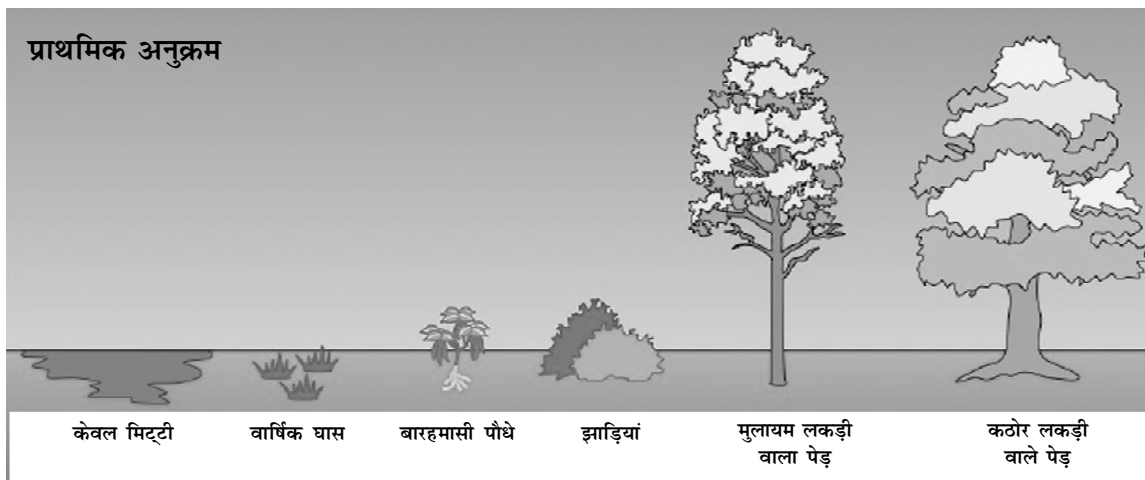
पारिस्थितिक तंत्र के किसी भी आवास क्षेत्र में वनस्पतियों के अनुक्रम को दो वर्गों में विभक्त करते हैं।

- स्वभाज्य या स्वजात अनुक्रम का सूत्रपात वनस्पतियों द्वारा स्वयं होता है।
- अन्यत्रजात अनुक्रम का सूत्रपात उस समय होता है जबकि स्थान विशेष के पर्यावरण के अजैविक कारकों में विभिन्नता होती है यथा विश्वव्यापी जलवायु में परिवर्तन, स्थान विशेष के अवसादीकरण द्वारा भराव का तीव्र गति से संपन्न होना, क्षेत्र विशेष का तीव्र गति से अपरदन होना आदि। पारिस्थितिकी स्थान एवं काल सन्दर्भित है। जो प्रकृति की क्षमता के अनुरूप गति करता है, वह जीवित रहता है और जो विफल होते हैं, विलुप्त हो जाते हैं। अनुक्रमण पाँच प्रकार के होते हैं।

1. प्राथमिक अनुक्रमण
2. द्वितीयक अनुक्रमण
3. स्वजन्य अनुक्रमण
4. बाह्य प्रभावजन्य अनुक्रमण
5. स्वपोषण अनुक्रमण

प्राथमिक अनुक्रमण (Primary Succession)

वनस्पतियों के विकास के प्राथमिक अनुक्रम के अंतर्गत उन क्षेत्रों में विभिन्न क्रमकों में वनस्पति समुदाय के विकास को सम्मिलित करते हैं जहां पर पहले किसी भी प्रकार के पौधे या प्राणी का जनन एवं विकास नहीं हुआ हो। इस तरह की अवस्थितियों जहां सर्वप्रथम वनस्पति का विकास होता है, कई प्रकार की हो सकती हैं यथा: नवीन लावा प्रवाह तथा उसके शीतलन द्वारा धरातल का निर्माण, हिमडिंड क्षेत्रों से हिम के पिघल जाने के कारण शैलों के अनावरण वाला भाग, झील के



जल के सूख जाने पर शुष्क झील तल वाला भाग, सागरीय तली के उन्मज्जन के कारण नवनिर्मित उन्मज्जित सागरीय द्वीप नवीन बालुकास्तूप का निर्माण, नदी द्वारा कॉप के निक्षेपण से निर्मित बाढ़ मैदान, मानव द्वारा खनन कार्य (खनिजों का) के दौरान मलबे के ढेर वाला भाग आदि।

यहां पर प्राथमिक अनुक्रम की व्याख्या के लिए ऐसी अवस्थिति का चयन किया जा रहा है जो नग्न शैल वाला भाग है तथा यह किसी भी तरह की वनस्पति या प्राणी से रहित है। यहां पर पहले किसी भी तरह की वनस्पति या प्राणी का जन्म तथा विकास नहीं हुआ है। इस तरह के आवास में वनस्पति समुदाय का विकास निम्न क्रमों में संपन्न होता है।

1. इस आरंभिक अवस्थिति का पर्यावरण शुष्क होता है। इसमें लघुस्तरीय शुष्क पर्यावरण का यह तात्पर्य नहीं है कि उस क्षेत्र की जलवायु ही हो, चूंकि चट्टानें नग्न हैं तथा कोई भी पौधा नहीं है, अतः वाष्पीकरण के आधिक्य के कारण शुष्क पर्यावरण होता है, जलवायु चाहे आर्द्र ही क्यों न हो। इस नग्न शैल पर आरंभिक पादप का विकास होता है जिसके अंतर्गत शैवाल एवं लाइकेन प्रमुख होते हैं तथा उस आवास के शुष्क, उष्ण या शीत (जो भी दशा हो) पर्यावरण को सहन कर सकते हैं।
2. आस-पास से धूलकण उड़कर इस आवास में आते हैं तथा लाइकेन के आस-पास एकत्र होते जाते हैं। कुछ लाइकेन अम्ल का स्राव करते हैं। जो शैलों में खनिजों के साथ अभिक्रिया करके कुछ खनिजों को घुला देता है तथा

मिट्टियों के निर्माण का कार्य प्रारंभ हो जाता है तथा मृदा में सूक्ष्म जीवों का विकास होता है।

3. शनैः शनैः मृदा का निर्माण शैल के अपक्षय के कारण तथा मृदा-जीवों द्वारा होता रहता है तथा उसकी मोटाई बढ़ती जाती है। इस स्थिति में मृदा में रहने वाले कुछ प्राणियों यथा कुटकी (कीड़ा, चींटी, मकड़ा) आदि का विकास होता है। इस क्रम में छिट-पुट पादप होता है तथा उनके बीच का स्थान खुला रहता है। इसे विवृत्त समुदाय कहते हैं।
4. समय के साथ आरंभिक समुदाय (शैवाल तथा लाइकेन) के स्थान पर मॉस का द्वितीयक समुदाय विकसित होता है। इनके द्वारा मृदा आवरण पर चादरी विस्तार होने से मृदा में नमी की मात्रा बढ़ जाती है तथा मिट्टियों को जैविक पदार्थ प्राप्त होने लगते हैं। धीरे-धीरे घास तथा बाढ़ में सदाबहार घास का विकास होता है। इस तरह की वनस्पति के साथ नये प्राणियों यथा गोलकृमि आदि का विकास होता है। धीरे-धीरे नयी वनस्पतियों द्वारा खुला भाग भर जाता है तथा घने वनस्पतिक आवरण के कारण आवास की लघुस्तरीय जलवायु में परिवर्तन तथा परिमार्जन हो जाता है यथा, इनके आवरण से मृदा सतह पर छाया हो जाने से तापमान तथा प्रकाश कम हो जाती है परन्तु नमी बढ़ जाती है। वाष्पोत्सर्जन द्वारा नमी का ह्रास कम हो जाता है। यदि आवास आर्द्र प्रदेश है तो इस अवस्थिति में संवृत समुदाय का सामान्य अर्थ है कि कोई स्थान वनस्पति रहित नहीं रह जाता है।